जामिया दर्पण

वर्ष–2, अंक–2, अप्रैल 2019

जामिया दर्पण

राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया की पत्रिका

वर्ष–2, अंक–2, अप्रैल 2019

संरक्षक

प्रो. नजमा अख़्तर, *कुलपति*

प्रधान संपादक

श्री ए.पी. सिद्दीक़ी, आईपीएस, *कुलसचिव*

संपादक

डॉ. राजेश कुमार 'माँझी'

संपादक मंडल

डॉ. यशपाल

कनीज़ फ़ातिमा

नदीम अख़्तर

संपादकीय कार्यालय

राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ

कुलसचिव कार्यालय

जामिया मिल्लिया इस्लामिया

नई दिल्ली–110025

दूरभाषः 011–26981717 एक्स.: 1223

ई–मेलः hindicell@jmi.ac.in

वेबसाइटः www.jmi.ac.in

पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार से विश्वविद्यालय अथवा संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

कुलपति का संदेश			
कुलसचिव का संदेश			
संपादकीय			
क्र.सं	**विषय**	**लेखक**	**पृ. सं.**
1	सांस्कृतिक विरासत को संजोने में आकाशवाणी की भूमिका	सुरेश वर्मा वरिष्ठ स० प्रोफेसर (रेडियो), जामिइ	6
2	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में निहित दलित प्रतिरोध	सदानंद वर्मा शोधार्थी, जामिइ	9
3	मदरसा शिक्षा प्रणाली की आलोचनाओं का विश्लेषणात्मक वर्णन	आज़म सिद्दीक़ी वैयक्तिक सहायक, विधि संकाय	12
4	कोरिया का आधुनिक समाज	प्रो. एम.पी. शर्मा, प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, जामिइ	15
5	उदारीकरण के दौर की भारतीय समाज व्यवस्था और हिंदी कहानी	सोनम ख़ान, शोधार्थी (हिंदी विभाग), जामिइ	17
6	संस्कृत का वैश्विक परिदृश्य	प्रो.गिरीश चन्द्र पन्त, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग	20
7	राजभाषा कार्यान्वयनः समस्याएँ और समाधान	डॉ. राजेश कुमार "माँझी"	23
8	कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का प्रश्न	डी. अरूणा, पी.एच.डी. शाोधार्थी (हिंदी) जामिइ	25
9	घर के गमलों के पौधे एवं रख–रखाव	डॉ. भारत भूषण, उद्यान विशेषज्ञ, उद्यान विभाग, जामिइ	30
10	दलित साहित्य और वैचारिकी का अन्तः संबंध	डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जामिइ	32
11	प्रौढ़ों के सीखने के सिद्धांत	डॉ. शिखा कपूर, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा विस्तार विभाग, जामिइ	35
12	भूमंडलीकरण का सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव	कन्हैया लाल, शोधार्थी (पीएचडी), हिंदी विभाग	37
13	शिक्षा एवं साहित्य पर आधुनिक बोध का प्रभाव	डॉ. यशपाल, हिंदी अनुवादक, जामिइ	41
14	हकीम अजमल खानः स्वदेशी और भारतीय स्वाधीनता को समर्पित जीवन	शुभम पांडे, छात्र, हिंदी विभाग	43
15	भारत में लोकतंत्र और चुनाव	राशिद कमाल, छात्र, एम.ए. हिंदी, जामिइ	45
16	स्वच्छता और स्वास्थ्य	डॉ. अय्यूब ख़ान, स्वच्छता निरीक्षक, सेनिटेशन यूनिट	46
17	युवाः देश की उन्नति का भागीदार	साकिब अज़ीज़, सहायक कुलसचिव	48
18	पेंशन एक सामाजिक सुरक्षाः दान नहीं सम्मान है	मोहम्मद जावेद, प्रयोगशाला सहायक, दंत चिकित्सा संकाय	50
19	भारत की शौर्य परपंराओं का प्रतीकः दिल्ली का राष्ट्रीय समर स्मारक	प्रियंका, छात्र बी.ए. (ऑनर्स) मास मीडिया हिंदी–अंतिम वर्ष	52
20	हिंदी संबंधी कुछ महत्वपूर्ण संस्थान		55
21	अख़बारों के आईने में जामिया		57
कविताएँ			
22	टूटी मूर्ति / भेड़ चाल	डॉ. सत्य प्रकाश प्रसाद, सहायक प्राध्यापक अनुप्रयुक्त विज्ञान व मानविकी विभाग, जामिइ	14
23	जीवन की छाया/क्यों/बर्फ़ के सीने पर/ जीवन/ब्लैक होल/पन्ने	प्रो. एस.एम. अख़्तर, प्रोफ़ेसर, वास्तुकला संकाय, जामिइ	54
24	बहना मेरी	राशिद कमाल, छात्र, एम.ए. हिंदी, जामिइ	19
25	एक मौन चीख	मजाज़ एम. सिद्दीक़ी, प्रोडक्शन मैनेजर, एजेके–एमसीआरसी	19
26	मानवता के वास्ते	अफ़ज़ल अयाज़ ख़ान, प्रवर श्रेणी लिपिक, कुलसचिव कार्यालय	47

जामिया मिल्लिया इस्लामिया
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
मौलाना मोहम्मद अली जौहर मार्ग, नई दिल्ली-११००२५

JAMIA MILLIA ISLAMIA
(Central University)
Maulana Mohammad Ali Jauhar Marg, New Delhi-110025
(ACCREDITED "A" GRADE BY NAAC)

جامعہ ملیہ اسلامیہ
(مرکزی یونیورسٹی)
مولانا محمد علی جوہر مارگ، نئی دہلی۔۱۱۰۰۲۵

Tel. : 011 - 26984650, 26985180, Fax : 01191-11-26981232 | Email: vc@jmi.ac.in | Web: jmi.ac.in

प्रोफेसर नजमा अख़्तर
कुलपति

Professor Najma Akhtar
Vice Chancellor

پروفیسر نجمہ اختر
شیخ الجامعہ

कुलपति का संदेश

जामिया मिल्लिया इस्लामिया की पत्रिका "जामिया दर्पण" के द्वितीय अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस पत्रिका का प्रकाशन राजभाषा हिंदी के प्रति जामिया की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करता है। मुझे यह कहते हुए गौरव की अनुभूति हो रही है कि "जामिया दर्पण" जामिया के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रतिभा को नया मंच प्रदान कर रही है और राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की दिशा में अहम भूमिका निभा रही है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि "जामिया दर्पण" के इस अंक में सम्मिलित लेखों, कविताओं, संस्मरणों इत्यादि से पाठक लाभान्वित होंगे और वे अपने कार्यालयी कार्य में राजभाषा हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए प्रेरित भी होंगे। पत्रिका में सम्मिलित सामग्री के लिए मैं उनके रचनाकारों को शुभकामनाएँ प्रेषित करती हूँ। साथ ही "जामिया दर्पण" को इस आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने के लिए राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ को बधाई देती हूँ और पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास की मंगल कामना करती हूँ।

नजमा अख़्तर

(प्रो. नजमा अख़्तर)
कुलपति

जामिया मिल्लिया इस्लामिया
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
मौलाना मोहम्मद अली जौहर मार्ग, नई दिल्ली - 110025
JAMIA MILLIA ISLAMIA
(A Central University)
Maulana Mohammad Ali Jauhar Marg, New Delhi-110025

दूरभाष : 26984075, 26988044
26985176, 26981717
फैक्स : 26980229
ई-मेल : registrar@jmi.ac.in
वेबसाइट : http//www.jmiac.in

कुलसचिव कार्यालय

Office of the Registrar

कुलसचिव का संदेश

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि "जामिया दर्पण" पत्रिका के द्वितीय अंक का प्रकाशन राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ द्वारा किया जा रहा है। "जामिया दर्पण" का उद्देश्य विश्वविद्यालय कर्मियों की सृजनात्मक प्रतिभा को उजागर करने के साथ–साथ राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन को बल देना है। सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति में किसी देश की भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और आज के वैश्वीकरण के दौर में विश्व के सभी राष्ट्रों में व्यापारिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के विस्तार के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण घटक है। इस दृष्टि से हिंदी निश्चित रूप से हमारे देश की प्रगति में सार्थक भूमिका निभा रही है। मुझे पूरा विश्वास है कि "जामिया दर्पण" राजभाषा हिंदी के प्रति अधिक से अधिक जागरूकता लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

(ए.पी. सिद्दीकी) आईपीएस
कुलसचिव

संपादकीय

भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषाएँ एवं बोलियाँ होती हैं। विश्व की तमाम भाषाओं एवं बोलियों के माध्यम से जनमानस अपने सुख–दुःख को अभिव्यक्त करता आया है। "जामिया दर्पण" के माध्यम से जामिया बिरादरी अपनी खुशी का इज़हार इस बात से कर रही है कि 99 वर्षों के इतिहास में जामिया के दोनों शीर्ष पदों अर्थात् कुलाधिपति और कुलपति पद पर आज महिलाएँ आसीन हैं। जहाँ मणिपुर की राज्यपाल डॉ. नजमा हेपतुल्ला जामिया की कुलाधिपति हैं वहीं प्रख्यात शिक्षाविद् प्रो. नजमा अख़्तर जामिया की कुलपति नियुक्त हुई हैं। हमारे लिए महिला सशक्तिकरण का इससे बेहतर उदाहरण कोई और नहीं हो सकता।

जामिया की नव–नियुक्त कुलपति प्रो. नजमा अख़्तर साहिबा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी हैं और चार दशक से अधिक समय का उन्हें शैक्षणिक नेतृत्व का अनुभव है। जहाँ प्रो. नजमा अख़्तर साहिबा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की गोल्ड मैडलिस्ट रही हैं वहीं एएमयू में ही वह परीक्षा नियंत्रक एवं अकादमिक प्रोग्राम की निदेशक भी रही हैं। उन्होंने कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। जामिया की कुलपति बनने से पूर्व प्रो. अख़्तर साहिबा नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (एनयूईपीए) के ट्रेनिंग एंड कैपेसिटी बिल्डिंग इन एजुकेशन डिपार्टमेंट की प्रमुख रही हैं। एनयूईपीए में उन्होंने पंद्रह वर्षों तक अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं और इस दौरान उन्होंने 130 देशों में वरिष्ठ अधिकारियों के लिए अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक प्रशासन कोर्स को संचालित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जामिया की कुलाधिपति और नव–नियुक्त कुलपति ने यह सिद्ध कर दिया है कि महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से कमतर नहीं हैं। जरूरत इस बात की है कि पुरूष–प्रधान देश महिलाओं की अदम्य साहस की पहचान करे और सरकार की योजना 'बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ' को क्रियान्वित करे ताकि महिलाएँ शिक्षा, न्याय, राजनीति, चिकित्सा, विज्ञान, तकनीक, सेना, समाज–सेवा आदि तमाम क्षेत्रों में अपने हुनर को प्रदर्शित कर सकें। हमें पूरी उम्मीद है कि कुलाधिपति और कुलपति के नेतृत्व में जामिया की पहचान वैश्विक स्तर पर और बढ़ेगी। साथ ही यह भी आशा है कि विश्व के प्रतिष्ठित शैक्षिक संस्थानों के साथ साझा पाठ्यक्रम संचालित किए जाएँगे जिससे ज्यादा से ज़्यादा विदेशी छात्र जामिया से जुड़ सकें।

राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ द्वारा प्रकाशित "जामिया दर्पण" के इस अंक में जिन महिला रचनाकारों की रचनाएँ सम्मिलित की गईं हैं उन रचनाओं से यह पता चलता है कि आज की महिलाएँ क्या सोच–समझ रही हैं तथा वे अपने मन की बातों को किस प्रकार अभिव्यक्त कर रही हैं। महिला रचनाकारों के अलावा जिन रचनाकारों के लेखों, कविताओं, संस्मरणों आदि को "जामिया दर्पण" में जगह मिल पाई है वे सभी बधाई के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने अपने–अपने भावों की अभिव्यक्ति सहज–सरल शब्दों में की है जिससे "जामिया दर्पण" के इस अंक को आकार मिल पाया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी "जामिया दर्पण" के लिए इसी प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती रहेंगी और हम राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार की अपेक्षाओं के अनुसार इस पत्रिका को प्रकाशित करते रहेंगे। "जामिया दर्पण" का प्रयास रहेगा कि साहित्य के साथ–साथ इसमें मानविकी, विज्ञान, अभियांत्रिकी और तकनीकी क्षेत्र के आलेखों को भी प्रकाशित किया जाए और यह बताया जा सके कि हिंदी में भी इन विषयों के लेख लिखे जा सकते हैं। राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ की ओर से मैं जामिया मिल्लिया इस्लामिया की माननीय कुलपति महोदया और कुलसचिव महोदय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं सहयोग के बिना "जामिया दर्पण" की कल्पना नहीं की सकती थी।

डॉ. राजेश कुमार 'माँझी'

सांस्कृतिक विरासत को संजोने में आकाशवाणी की भूमिका

सुरेश वर्मा

शोध सार

दुनियाभर के विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में पिछले लगभग 100 सालों में संस्कृति के सरंक्षण व सांस्कृतिक इतिहास के प्रचार–प्रसार में रेडियो ने अहम भूमिका अदा की है। यह एकमात्र जनसंचार का शक्तिशाली साधन है जिसमें तत्परता, लोचशीलता व सरलता के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व स्थानीय श्रोताओं तक पहुँचने का सामर्थ है। सूचना, संस्कृति, शिक्षा, संगीत व कला के द्वारा मानसिक परिधि के विस्तार व व्यवहार में परिवर्तन का कार्य व्यक्ति की अपनी मातृभाषा या स्थानीय बोली में करने का साहस किसी दूसरे जनसंचार माध्यम में नहीं है। इस जन–माध्यम ने शिक्षा, कला, सूचना, संगीत, सामाजिक परिवर्तन व ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व में एक महत्वपूर्ण सोपान का कार्य किया और विकासशील देशों के लिए सबसे सक्षम सर्वसुलभ, सरल, सर्वप्रिय व सस्ता जनसंचार माध्यम के रूप में स्थापित किया।

भारत में रेडियो स्टेशन से प्रसारण का इतिहास 92 वर्ष पुराना है जब पहला रेडियो प्रसारण 23 जुलाई 1927 को मुम्बई से प्रारंभ हुआ। भारतीय रेडियो प्रसारण उद्योग की गणना भाषा, व्यापकता, सामाजिक व सांस्कृतिक विविधता के आधार पर विश्व के अग्रणी संगठनों में की जाती है। भारत में आकाशवाणी 471 रेडियो स्टेशनों से 99 प्रतिशत जनसंख्या तक अपनी पहुँच रखता है और 23 भाषाओं व 176 बोलियों में विविध कार्यक्रमों का प्रसारण करता है जो विश्व भर में अनूठा व अनुपम है। आकाशवाणी के उन कार्यक्रमों की चर्चा इस शोध पत्र में की गई है जिन्होंने सांस्कृतिक धरोहर को सरंक्षित किया है एवं परम्परागत व शास्त्रीय संगीत, औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा एवं स्वस्थ मनोरंजन को ग्रामीण जीवन तक पहुँचाने में विकासात्मक संचार को नयी दिशा प्रदान की।

प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र के विकास में केवल प्राकृतिक सम्पदा का ही योगदान महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि उससे अधिक महत्व होता है मानव सम्पदा का। मानव सम्पदा में शिक्षा का योगदान तो होता ही है परन्तु उसके साथ उसकी विरासत, साहित्य, संगीत, पर्व, भाषा, लोककला, नृत्य, नाटक आदि का भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरण होता रहता है। अनौपचारिक शिक्षा की यह विधा दुनिया के हर देश में रही परन्तु कुछ देश परिवर्तन की तेज धारा में इसे बचा नही पाए और कुछ राष्ट्रों ने उन्हीं परम्पराओं को संजोकर नई तकनीक भी विकसित कर ली। इस धरोहर को सुरक्षित, सरंक्षित रखकर उनका संवर्धन करने और उन्हें प्रचारित व प्रसारित करने में मीडिया का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

19वीं सदी के उतरार्द्ध में टेलीग्राफ, टेलीफोन व फिल्म के आविष्कार के बाद संचार के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण आविष्कार रेडियो था जिसने 20वीं सदी में दुनिया के हर देश–प्रदेश, ग्राम–शहर, स्त्री–पुरुष, धनी–निर्धन, साक्षर–निरक्षर व बाल–वृद्ध को प्रभावित किया। पिछले नौ दशकों से रेडियो विश्वभर में औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा का सशक्त माध्यम रहा है और विकसित व विकासशील सभी राष्ट्रों में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। रेडियो माध्यम जहाँ कम कीमत का है, वहीं इसकी व्यापकता व प्रभाव सर्वाधिक। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के महात्मा बुद्ध के सिद्धांत से स्थापित भारतीय रेडियो और रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा दिए गए नाम 'आकाशवाणी' विश्व भर में बहुभाषा के आधार से सबसे बड़ा रेडियो नेटवर्क ही नहीं है, बल्कि लोक सेवा प्रसारण का भी अनुपम उदाहरण विश्व के सामने प्रस्तुत करता है। अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, स्थानीय व सामुदायिक सभी स्तर पर आल इंडिया रेडियो अपने ट्रांसमीटरों के माध्यम से दिन–रात 23 भाषाओं व 176 बोलियों में साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, मनोरंजन, खेल, विज्ञान व अनुसन्धान आदि विषयों से संबंधित जानकारी जनमानस की भाषा में प्रसारित करता है। आज आकाशवाणी विश्व के विशालतम प्रसारण संगठनों में से एक है। यह 471 रेडियो स्टेशनों के द्वारा भारत के 92 प्रतिशत भूभाग और 125 करोड़ देशवासियों तक पहुँचने का अनुपम संसाधन है। खास बात यह है कि 23 भाषाओं तथा 176 बोलियों में अपनी बात कहने में इसका कोई प्रतियोगी नहीं है। अपने विदेश प्रसारण सेवा में यह 11 भारतीय भाषाओं एवम् 16 विदेशी भाषाओं में 100 देशों तक अपनी पहुँच रखता है। ऑल इंडिया रेडियो की सांख्यिकी पर यदि दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि 20 सितम्बर, 2018 तक आकाशवाणी के 471 केंद्र हैं जिनमें से 134 बड़े स्टेशन, 86 स्थानीय रेडियो स्टेशन, 5 सामुदायिक रेडियो स्टेशन व 246 रिले स्टेशन शामिल हैं। आकाशवाणी के 667 ट्रांसमीटर हैं जिनमें से 139 मीडियम वेव, 48 शोर्ट वेव तथा 480 एफएम ट्रांसमीटर हैं। यही नहीं आकाशवाणी अपने 37 कैप्टिव अर्थ स्टेशन, 228 स्टूडियो, 47 क्षेत्रीय समाचार यूनिट, 39 डी टी एच चैनल तथा 17 लाइव स्ट्रीमिंग चैनल से भी दिन–रात अथक सेवाएँ प्रदान करता है।

रेडियो को जन सामान्य का माध्यम कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में संचार में तीन मुख्य बाधाएँ आती हैं–दुर्गम स्थान में पहुँचने में कठिनाई, अशिक्षा तथा गरीबी। रेडियो, प्रिन्ट की भांति केवल साक्षर लोगों की संपत्ति नहीं है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी इसके संदेश को भली प्रकार से समझ सकता है. रेडियो बिना बिजली

के उन स्थानों में भी सुना जा सकता हैं जहाँ अभी भी अधिक विकास नहीं हुआ है या जहाँ पहुँचने में कठिनाई है। तीसरा कारण इसकी बहुत कम कीमत है जिससें कोई भी व्यक्ति आसानी से इसका प्रयोग कर सकता है। रेडियो जनसाधारण की समस्याओं को समझता है तथा उसको मुखरित भी करता है। इससे न केवल समाधान के उपाय किए जाते हैं बल्कि विकास की गति को रेडियो बहु उपयोगी बना देता है। हाल के वर्षो में स्थानीय व समुदायिक प्रसारण केंद्रो की शुरूआत की गई जिसका उद्देश्य लोगो को आगे का ज्ञान प्रदान कर विकास की दर को बढ़ाना रहा हैं। इसमें लोगों की भागीदारी बढ़ी है तथा संचार की बाधाएं दूर हुई हैं।

आकाशवाणी और साहित्य

विश्व स्तर पर रेडियो की भूमिका सूचना देने, शिक्षा देने व मनोरंजन करने की रही है। साहित्य एक ओर समाज का चित्रण करता है तो दूसरी ओर समाज का मार्गदर्शन कर दिशा भी प्रदान करता है। यही कार्य रेडियो इतने सहज तरीके से करता है कि उसके श्रोताओं व पाठकों को आनंद की भी अनुभूति होती है जो सच्चे अर्थों में मनोरंजन होता है। आकाशवाणी प्रसारक मदन शर्मा अपनी पुस्तक 'रेडियो नाटक' में लिखते हैं– 'विधिवत् 23 जुलाई,1927 से अपने अस्तित्व में भारत में आई प्रसारण सेवा ने प्रारम्भ से ही साहित्य को अपने अंक में समेटना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय का साहित्य बिखरा हुआ था। यह पत्रों और पुस्तकों तक सीमित था। साहित्य सीमित था और वह भी केवल पढे–लिखे कुछ खास तबकों तक। बंद था पुस्तकालयों की धूल भरी अलमारियों में। आकाशवाणी ने उस बंद साहित्य की धूल भरी परतों को हटाकर उसे बाहर निकाला और जन–जन तक पहुँचाने का भागीरथ प्रयत्न किया। प्रसारण के इस श्रव्य माध्यम से वे लोग भी लाभान्वित हुए जो पढ़ लिख नहीं सकते थे। आकाशवाणी के रूप में, साहित्य को सुदृढ प्लेटफार्म उपलब्ध हुआ। साहित्य के क्षेत्र में नए प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय भी आकाशवाणी को ही प्राप्त है। कहानियाँ, काव्यों के रूपान्तरों के अतिरिक्त उपन्यास को एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया। उपन्यास जो केवल पठनीय हो कर रह गए थे, अब प्रसारण के माध्यम से जन–जन तक पहुँच रहे थे। कवि और कविता को आकाशवाणी ने देश के कोने–कोने में पहुँचा दिया और इस विधा के सीमित श्रोताओं की संख्या बढ़ा दी।

आकाशवाणी की लोकप्रिय विधा है–रेडियो नाटक। इस विधा में शब्द, संगीत, स्तब्धता व ध्वनि प्रभाव के मिश्रण से श्रोताओं के मानसिक पटल पर चित्र उभारने की ऐसी कला थी कि फिल्मों का पर्दा भी इसके सामने फीका पड़ जाता था। रेडियो ने अनेक विषयों पर नाटकों का सृजन किया। पौराणिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक, साहित्यिक एकांकी, लघु नाटक, प्रहसन, झलकी आदि अनेक विषयों पर विविध शैली में आकाशवाणी से इन का प्रसारण किया गया। जय शंकर प्रसाद, डॉ राम कुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, कालिदास, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, राष्ट्रकवि दिनकर, सुमित्रानंदन पंत, विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्र कुमार आदि हिंदी के महान रचनाकारों का साहित्य आकाशवाणी के माध्यम से लोकप्रिय हो पाया। 1956 से आकाशवाणी से 'नाटकों का अखिल भारतीय कार्यक्रम' प्रसारित होने लगा जिसमे भारतीय भाषाओँ का सर्व श्रेष्ठ नाटक सभी भाषाओं में अनुवादित होकर सम्पूर्ण देश में प्रसारित होने लगा। इस प्रकार साहित्यकारों के लिए आकाशवाणी एक मन्दिर के रूप में कर्मस्थली ही नहीं बना बल्कि उन्हें जनमानस में लोकप्रिय बनाने का द्वार भी सिद्ध हुआ।

आकाशवाणी और संगीत

अनादि काल से मानव का संगीत के साथ सम्बन्ध रहा जिसने उसकी प्रसन्नता व वेदना को ही प्रकट नहीं किया बल्कि अंतर्मन के सभी भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भी बनाया। अलग–अलग आवाजों व लकड़ी, तारों व अन्य वस्तुओं से निर्मित वाद्य–यंत्रों पर ताल व सुरों से मानव ने अपनी प्रसन्नता का इज़हार किया। सितार, बांसुरी, ढोलक, नगाड़े, डफली, तुरही, तबला व हारमोनियम आदि न जाने कितने ही वाद्य–यंत्र विकसित होते गए। प्रकृति के आधार पर संगीत की नीव पड़ी व विकास के पथ पर अग्रसित हुई। यद्यपि संगीत की कोई भाषा नहीं होती परन्तु हर देश, प्रदेश व प्रान्त की झलक इसके माध्यम से हमें मिल जाती है। भारतीय संस्कृति में गायन, वादन व नृत्य को विशेष महत्व दिया गया। मानव हेतु ही नहीं अपितु देवताओं को भी प्रिय है। नटराज शिव डमरू प्रिय हैं तो विद्या की देवी सरस्वती वीणावादिनी है और श्रीकृष्ण बांसुरी की तान पर नर–नारी, पशु–पक्षी व् प्रकृति को भी मोहित कर लेते हैं।

आकाशवाणी ने अपने कार्यक्रमों में संगीत, शब्दों व ध्वनि प्रभावों के मिश्रण द्वारा संगीत के विविध रूपों को जनमानस में लोकप्रिय बनाने में ही सहयोग नही दिया, बल्कि अनेक लुप्त होती विधायो को संजोने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। संगीत के न जाने कितने ही कलाकार अपनी पहली प्रस्तुति आकाशवाणी के द्वारा देकर लोकप्रियता के शीर्ष तक पहुँचने में सफल हुए। भारतीय संगीत की अनेक विधाएँ हैं जैसे शास्त्रीय जो गायन या वादन हो सकता है या हिन्दुस्तानी या कर्नाटक शैली में हो सकता है या विभिन्न घरानों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त उप शास्त्रीय, सुगम संगीत, हर प्रदेश का लोक संगीत, भक्ति संगीत, फिल्म संगीत व पाश्चात्य संगीत भी आकाशवाणी ने विरासत के रूप में संजो रखा है।

आकाशवाणी और कला

दुनिया में हर व्यक्ति सृजनात्मक होता है चाहे वह गायन हो या वादन, चित्रकला हो या वास्तुकला, बोलने की कला हो या फिर लेखन। ललित कला कोई भी हो, वह हमारे श्रम को शीतलता, शोक संतप्त हृदय को सांत्वना एवं पीड़ा को कम कर आनंद की अनुभूति कराती हैं। रेडियो में अनेक कलाओं का संगम होता है– संगीत, ध्वनि प्रभाव व शब्दों के मिश्रण की कारीगरी रेडियो में दिखती है। शब्दों द्वारा केवल विचार, सूचना या धारणाओं को ही नहीं प्रेषित किया जाता, बल्कि बेहद पेचीदा चित्र भी अनेकानेक रंगों की भांति प्रस्तुत कर लिए जाते हैं। आकाशवाणी ने न जाने कितने ही छोटे कलाकारों को मंच ही नहीं दिया, बल्कि उनका उत्थान कर उनकी कला को विश्व स्तर

पर लाने में भी सहयोग प्रदान किया। अनुपम खेर ने अपना कैरियर शिमला आकाशवाणी से ड्रामा आर्टिस्ट के रूप में शुरू किया जो आज बॉलीवुड में अपनी कला के लिए जाने जाते है। सुनील दत्त फिल्मों में आने से पहले आकाशवाणी में उद्घोषक के पद पर कार्यरत थे। पंडित रवि शंकर आकाशवाणी के संगीत विभाग से जुड़े थे जो आज विश्व भर में अपनी कला के लिए जाने जाते हैं। अनूप जलोटा को आकाशवाणी ने ही लोकप्रिय बनाया। लेखन के क्षेत्र में जैनेन्द्र कुमार, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, अमृता प्रीतम आदि शीर्ष के रचनाकार रेडियो का सदैव आदर करते रहे। बहुचर्चित नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर आकाशवाणी के केंद्र निदेशक रहे। राष्ट्रीय, प्रादेशिक, स्थानीय व सामुदायिक स्तर पर ऐसे सभी रचनाकारों का आकाशवाणी को अत्यंत महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

आकाशवाणी और पर्व

रेडियो किसी भी राष्ट्र का 'सांस्कृतिक राजदूत' होता है जो न केवल अतीत की यादों को स्वयं में संजोता है, बल्कि अपने महापुरुषों, संतों, कवियों, कलाकारों, नेताओं को याद कर उनके जीवन दर्शन से भी आमजन को अवगत कराता है ताकि हम उनके दर्शाए मार्ग व पद चिन्हों का अनुसरण कर सकें। स्वतंत्रता दिवस या गणतंत्र दिवस या गाँधी जयंती पर रेडियो से प्रसारित देशभक्ति के गीत राष्ट्र–प्रेम को ही नहीं उपजाते, बल्कि ह्रदय की गहराईयों में समा जाते है और विवश करते हैं देश के लिए शहीद हुए महान सैनानियों को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने को। उस समय आकाशवाणी के कार्यक्रमों के साथ भावनाओं का समुद्र हिलोरे लेता है। आकाशवाणी वर्ष में दो बार भारतीय संस्कृति अनुसार पर्वो, पुण्य तिथियों, जयंतियों, सप्ताहों, पखवाड़ों, अभियानों व सयुंक्त राष्ट्र द्वारा मनाए जा रहे विशेष वर्ष की तिथियों की विस्तृत सूची अपने सभी केन्द्रों के कार्यक्रम अध्यक्षों को भेजता है ताकि स्थानीय भाषा में जन मानस तक विचारों की सरिता बहती रहे। पर्व व जयंतियों का सीधा प्रसारण, स्थल रिकॉर्डिंग ही नहीं की जाती बल्कि इन विषयों पर वार्ता, नाटक, रूपक या रेडियो डॉक्युमेंट्री आदि विधाओं का प्रयोग भी इसे लोकप्रिय बना देता है।

आकाशवाणी और भाषा

किसी भी रेडियो की छवि उभारने में जहाँ उसके कार्यक्रम निदेशक का महत्वपूर्ण योगदान होता है, वहीं उसके निर्माता भी अपनी कुशलता का परिचय देते है। परदे के पीछे तकनीकी पक्ष की पूरी टीम किसी भी कार्यक्रम को श्रोताओं तक पहुँचाने में अपनी दक्षता दिखाती है तो सबके सामने श्रोताओं से रुबरु होता है। उद्घोषक, कम्पीयर या आर०जे०। इनकी आवाज़ किसी भी केंद्र से सबसे अधिक सुनाई ही नहीं देती बल्कि उनकी मधुरता, शब्द शक्ति, प्रवाह व शैली श्रोताओं को भी उस आकाशवाणी केंद्र के साथ बाँध लेती है। भाषा जितनी सरल, सहज, सुलभ, स्वभाविक व मधुर होती है वह उतनी ही कर्णप्रिय व बोधगम्य हो जाती है। दैनिक जीवन में आलंकारिक, कृत्रिम व क्लिष्ट भाषा का प्रयोग जन मानस को रेडियो से दूर कर देता है। यहाँ आकाशवाणी ने भाषा को संजोने व 176 बोलियों में प्रसारण द्वारा न जाने कितने ही शब्दों को सजीव किया व अनेकानेक बोलियों को लुप्त होने से बचाया है। भाषा के उच्चारण की शुद्धता की अगर बात की जाती है तो सबसे पहले नाम आकाशवाणी का आता है और उसके उद्घोषक द्वारा उच्चारित शब्द मानक मान लिए जाते हैं जो सरल सम्मान नहीं है।

आकाशवाणी और दर्शन

हमारे ग्रन्थ वेद, पुराण व उपनिषद आदि में सदियों से अर्जित ज्ञान को अत्यंत गूढ़ रीति से वर्णित किया गया है जिसे जनमानस तक उनकी शैली, बोली व भाषा में रेडियो अवलोकित करता है। आकाशवाणी के लगभग सभी केन्द्रों से प्रातः काल में एक कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है जिसकी अवधि मात्र 2–4 मिनट की होती है परन्तु मानस पटल पर इसकी गहरी छाप पड़ती है जिसे अलग–अलग शीर्षकों से प्रसारित किया जाता है, जैसे चिन्तन, मनन, मंथन, 'आज का सुविचार' आदि, इस दो–तीन मिनट के कार्यक्रम में महान चिंतकों के जीवन के प्रेरक प्रसंग व बोल, शास्त्रों की सूक्तियाँ और चरित्र को ऊपर उठाने वाली शाश्वत सामग्री का संकलन व समावेश किया जाता है। इस छोटे परन्तु अत्यंत प्रभावशाली कार्यक्रम में ज्ञान, संस्कृति व संस्कार की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। ये कार्यक्रम प्रातः काल के पवित्र समय में रेडियो की 'नैतिक स्मरण की चिंगारी' कही जा सकती है जो दिनभर आत्मा को पोषित, प्रेरित और आंदोलित करती है। 'गागर में सागर' कहा जा सकने वाला यह कार्यक्रम नाविक के तीर की भांति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसका उद्देश्य जन मानस का समग्र विकास, जीवन में सुधार व नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था व आत्मविश्वास जगाना होता है।

निष्कर्ष

मात्र ध्वनि का माध्यम आकाशवाणी अपने नौ दशकों के जीवनकाल में भारतीय इतिहास की अनेक घटनाओं का साक्षी रहा है। इस राष्ट्र की कला, संस्कृति, विरासत, लोकगीतों, शिक्षा, विज्ञान, टेक्नोलॉजी, संगीत, भाषा, पर्व व मेलों, साहित्य व दर्शन आदि के साथ उसका मीलों का लम्बा सफर है। विविध कार्यक्रमों का प्रसारण सरल भाषा में जनमानस को शिक्षा देने, सूचित करने, प्रेरित कर व्यवहार परिवर्तन करने के साथ–साथ सभी का मनोरंजन करने के लक्ष्य को आकाशवाणी ने महात्मा बुद्ध के महावाक्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' से चरितार्थ किया है।

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

1 दृश्य–श्रव्य एवं जनसंचार माध्यम–डॉ कृष्ण कुमार रत्तु
2 रेडियो नाटक–मदन शर्मा
3 प्रसारण पत्रकारिता–डॉ सुरेश यादव
4 जनसंचार एवं पत्रकारिता –विविध आयाम –सुरेश वर्मा
5 www.allindiaradio.gov.in

सहायक प्रोफेसर, एजेके–एमसीआरसी,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में निहित दलित प्रतिरोध

सदानंद वर्मा

दलित विमर्श, समकालीन विमर्शों में एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है जिसमें साहित्य की सामाजिकी को एक नए पाठ के सहारे पढ़े जाने के लिए एक विमर्श खड़ा किया है। इसमें पौराणिकता, परंपरा, विरासत, कथा–विषय तथा नायक–नायिका आदि विषयों पर अवलोकन व अन्वेषण किया जा सका है यह न केवल सैद्धांतिक परंपरावादी साहित्य और सौंदर्यशास्त्र को नए सिरे से परिभाषित करने की वकालत करता है, बल्कि मानव को केंद्र में रखते हुए मानवतावादी साहित्य को सर्वोपरि सिद्ध करने पर जोर देता है।

साहित्यिक शब्दकोशों के अनुसार 'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– "विनष्ट किया हुआ, मसला हुआ, दबाया गया, रौंदा गया या कुचला गया"[1] अर्थात 'दलित' शब्द भारतीय समाज में उस वर्ग के लिए प्रयोग किया जाता है जो गुलामी, शोषण व तिरस्कृत जीवन व्यतीत करता आया है। न तो उन्हें कभी स्वतंत्र होकर जीने की आजादी मिली और न ही अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट करने की स्वतंत्रता। इसके बावजूद उन्हें सिर्फ प्रताड़ित ही किया जाता रहा है। यह प्रताड़ना चाहे समाज के द्वारा होती रही है या शास्त्रों के द्वारा। लेकिन वे चारों तरफ से शोषित ही होते रहे हैं। 'दलित' शब्द की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए शरण कुमार लिंबाले ने लिखा है कि "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर बलिश्ठों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की वही और वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।"[2] दलित साहित्य समग्रतः इन्हीं विचारों से प्रभावित होते हुए साहित्य में न केवल मनुष्य को प्राथमिकता देती है बल्कि उन्हें शिक्षित व संगठित होकर इन षड्यंत्रों के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित भी करती है। यह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक स्तर से पिछड़े हुए और उत्पीड़ित व अपमानित लोगों की पीड़ा को व्यक्त करते हुए वर्ण व्यवस्था के जाल में फंसे लोगों को जागरुक करने की ओर निरन्तर प्रतिबद्ध है जिससे की समाज से इन रूढ़िवादी कुरीतियों, छुआ–छूत, भेद–भाव, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक असमानता को दूर किया जा सके।

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य को स्थापित करने का कार्य सातवें–आठवें दशक में उस समय किया गया जब हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित कथाकार कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका के दो दलित साहित्यिक विशेषांक 1975 ई. में संपादित किया। इसके बाद महीप सिंह ने 'सचेतना' पत्रिका के माध्यम से 1980 ई. में एक दलित अंक संपादित किया। तदुपरांत 'हंस' पत्रिका में 1992 ई. से राजेंद्र यादव ने 'दलित चेतना : विशिष्ट संदर्भ प्रेमचंद' नामक विषय से लगातार दलित संबंधी रचनाओं व लेखों को छापते हुए हिंदी साहित्य में उसे एक प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में महती भूमिका निभाई। वैसे मराठी साहित्य के क्षेत्र में 1972 ई. में ही 'दलित पैंथर' पत्रिका की स्थापना हो गई थी जहाँ से हिंदी दलित रचनाकारों को एक प्रेरणा मिलती है।

हिंदी साहित्य में दलित लेखन को एक व्यवस्थित रूप देने में प्रेमचंद का नाम अग्रणीय है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में समाज की वास्तविकता को जिस समग्रता के साथ अभिव्यक्त किया है वह हिंदी के, विशेषकर दलित रचनाकारों के लिए आदर्श रूप है। उन्होंने दलित कहानियों के क्षेत्र में शूद्र, मंत्र, मंदिर, घासवाली, सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, कफन आदि प्रतिष्ठित कहानियों का सृजन किया जिन्हें हिंदी साहित्य में दलित लेखन के कार्य में एक महत्वपूर्ण योगदान के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन जब दलित चेतनायुक्त लेखन की बात की जाती है तो वहाँ प्रेमचंद का लेखन बौना साबित होता हुआ दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद के लेखन पर विचार करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि "प्रेमचंद दलित चेतना के लेखक नहीं हैं वे दलित संवेदना के लेखक हैं और उनके कथा साहित्य में दलित जीवन की स्थितियों का मार्मिक चित्रण मिलता है।"[3] निश्चित तौर पर ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन यथार्थ प्रतीत होता है क्योंकि जब हम दलित चेतना की बात करते हैं तो वहाँ अंबेडकरवादी विचारधारा या चिंतन को प्रमुखता दी जाती है जहाँ वर्ण व्यवस्था को नकारा जाता है, ईश्वर को नकारा जाता है। दलित चेतना को इंगित करते हुए शरण कुमार लिंबाले ने लिखा है कि "मनुष्य को केंद्र मानकर जाति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने वाली प्रतीति है। इस चेतना की प्रेरणा अंबेडकरवादी है। दलित चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत करा देती है। दलित चेतना दलित साहित्य का महत्वपूर्ण जनन बीज है।"[4] इस दृष्टि से प्रेमचंद का लेखन उचित नहीं ठहरता। इसलिए उनको मानवीय संवेदना का साहित्यकार कहा जाए तो ज्यादा प्रासंगिक होगा।

समग्रतः हिंदी में दलित कहानियों की परंपरा में ओमप्रकाश वाल्मीकि एक युगप्रवर्तक रचनाकार हैं। चाहे वह मानवीय संवेदना के स्तर पर हो या दलित चेतना के। उन्होंने न केवल अपने लेखन से दलित कहानियों का फलक विस्तृत किया है बल्कि उसमें कई नए मूल्यों को स्थापित कर उसे उत्कर्ष तक पहुँचाया है। घटनाओं की विविधता हो या बात करने का तरीका, हर जगह उन्होंने अपनी मौलिकता से दलित कहानियों को समृद्ध किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में जो अनुभव व घटनाएं प्रस्तुत हुई है। उन्होंने समाज के संवेदनशील लोगों में एक बेचैनी अवश्य पैदा की है। बहुत से मिथक व भ्रम टूटे हैं। जिन मूल्यों व मान्यताओं को बिल्कुल पवित्र व अनालोच्य मानकर बड़ी शान से व्यवहारिक रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था उसके वास्तविक चेहरे को उद्घाटित कर वे समाज के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देते है और जब इन षडयंत्रों का पर्दाफाश समाज के शिक्षित वर्गों के सामने होता है तब उसे एहसास होता है कि वह

जिस व्यवस्था को अच्छा मानकर बड़ी शान से अपने जीवन के प्रयोग में लाता रहा है असल में वह वैसा नहीं है तो उसे, उस व्यवस्था से ग्लानिबोध होता है। और वह इस व्यवस्था की कमियों को उजागर कर लोगों की संवेदना को अपनी संवेदना मान उसके साथ हमेशा खड़ा दिखाई पड़ता है। वह हमेशा से इन षड्यंत्रों के खिलाफ सतर्कता से पेश आता है। वास्तव में प्रतिरोध की शुरुआत यहीं से होती है।

प्रतिरोध के स्वर से युक्त कहानी 'सलाम' में ऊँची शान और रूढ़िवादी प्रवृतियों का यथार्थ स्वरूप दिखाई पड़ता है, जहाँ दलित वर्ग का दूल्हा अपनी दुल्हन को लेकर गांव में सवर्णों की बस्ती में जाकर उनके दरवाजे पर शीश झुकाकर सलाम करता है और बदले में उसे कुछ पैसे या कपड़ा, अनाज मिल जाता है। ऐसे ही दूसरी तरफ जब दूल्हा शादी के बाद दुल्हन को मायके से ससुराल लाता है तो उसे ससुराल आने से पहले दूल्हे को लेकर गाँव के उच्च जाति के घर–घर जाकर शीश नवाना पड़ता है। यहाँ पर भी नेक दस्तूर में जो कुछ भी मिल जाता उसे लेना पड़ता है। यहाँ चिंतन करने वाली बात यह है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जिस समय समाज में जीवन बिताया उस समय देश अँग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो चुका था और समाज में स्वतन्त्रता, मानवाधिकार, अभिव्यक्ति की आजादी और समानता को संवैधानिक रूप से सबके लिए अनिवार्य कर दिया गया था और उस समय समाज में इस तरह की रूढ़िवादी व्यवस्था का कायम होना निश्चित रूप से भारतीय समाज की व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करता है जहाँ किसी के मानवीय मूल्यों व अस्मिताओं को प्राथमिकता ही नहीं दी जाती। यह एक ऐसा षड्यंत्र है जिसको समझ पाना मुश्किल है, लेकिन लेखक स्वयं एक दलित वर्ग से होने के कारण ऐसे षड्यंत्रों को अच्छी तरह पहचानता है। इसीलिए जब कहानी के नायक हरीश को लड़की के घरवालों की तरफ से सलाम पर जाने के लिए कहा जाता है तो वह साफ मना कर देता है। हरीश जैसे पात्र के माध्यम से वह इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह करते हुए कहलवाते हैं कि "मुझे न ऐसे कपड़े चाहिए, न बर्तन, मैं अपरिचितों के दरवाजे 'सलाम' पर नहीं जाऊँगा"[5]। इस टिप्पणी से उन्होंने अपने प्रतिरोधी सरोकारों को स्पष्ट किया है। उनका प्रतिरोध करने का तरीका भी साहसिक है। सही मायनों में दलित समाज में चेतना की उत्पत्ति ऐसे ही हो सकती है जहाँ पहले से चली आ रही व्यवस्था पर कटाक्ष किया जाए, उसे रोका जाए। उसके पीछे होने वाले छलाव को समझा जाए। दलित चेतना का यथार्थ स्वरूप अभी हाल ही गुजरात में हुई घटनाओं के रूप में भी देखा जा सकता है जहाँ एक दलित पर गौहत्या का आरोप लगाने के कारण पूरे दलित समुदाय के लोगों ने यह प्रतिज्ञा की कि अब वह मरे हुए गायों को उठाने नहीं जाएँगे। निश्चित तौर पर यह घटना ओम प्रकाश वाल्मीकि कि कहानी 'बैल की खाल' की उसी घटना की ओर इशारा करती है जहाँ काले और भूरे जैसे पात्र जो मरे हुए जानवरों को उठाने का काम करते हैं उनकी अनुपस्थिति व उनके महत्व का पता पूरे गाँव को है, लेकिन इसके बदले उन्हें क्या मिलता है सिर्फ ऊँचे समाज की प्रताड़ना व उनके द्वारा होने वाला अभद्र व्यवहार। वस्तुतः वे समाज के लिए नीच हैं, अछूत हैं, मनुष्य नहीं है। तभी तो उनके साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है। उन्हें इंसान समझा ही नहीं जाता। उन्हें भी इसका एहसास है तभी तो दोनों अपने अस्तित्व पर विचार करते हुए कहते हैं–'भूरे हमें यू काम छोड़ देना चाहिए।'

'क्यूँ...जो हमने इस काम को छोड़ दिया तो करेगा कौण? क्या मरे हुए ढ़ोर–डंगर गाँव में ही पड़े सड़ते रहेंगें...'

'सड़ने दें...इस सड़ांध में हम गले–गले तक डूब जाते हैं। किसे परवाह है...कोई अपने धोरे (पास) बी ना बैठावे है।'[6] यहाँ काले और भूरे के एक–एक कथन सत्य को उद्घाटित करते हैं। यह कहानी दलित जागरुकता को रेखांकित करती है जो आज कहीं ना कहीं चेतनाप्रद होकर इस तरह के घिनौने कार्यों को छोड़ रहा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने विभिन्न विषयों जैसे– आजीवन गुलामी, शोषण, छलावा, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड, ढोंग और जातिगत भेद–भाव को रेखांकित करते हुए उत्कृष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में आक्रोश का स्वरूप स्पष्टः दिखाई पड़ जाता है। लेकिन यह आक्रोश विचार के धरातल पर रखते हुए पड़ताल करने की मांग करता है। इसी कारण उनके द्वारा द्रष्टव्य आक्रोश देर तक टिकता है और परिवर्तन की प्रेरणा देता है। वह किसी हड़बड़ी में नहीं दिखाई पड़ते बल्कि अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन कराकर ही सुकून लेना चाहते हैं।

समाज में वर्ण व्यवस्था की जड़ बहुत पुरानी है। हमारी मानसिकता का स्वरूप अपने संबंधी लोगों के बीच बिताए गए जीवन फलकों पर निर्भर करता है जिसे हम आम बोल–चाल की भाषा में संस्कार कहते हैं। वास्तव में हमारा समाज इतना रूढ़िग्रस्त और संवेदनशील है कि हम उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते एक–दूसरे के विचारों व भावों की नकल अपने मन–मस्तिष्क में करते रहते हैं और यही मानसिक प्रवृतियों के रूप में स्थापित होती जाती है जो हमारे अंदर ऊँच–नीच के विभेद को उत्पन्न करती है। इसका यथार्थ स्वरूप 'कहाँ जाए सतीश ?' कहानी में भी देखने को मिलता है जहाँ मि. पंत और मिसेज पंत को जब तक यह पता नहीं चलता कि सतीश एक भंगी है–तब तक वह उनके घर में बड़े ही ठाठ से परिवार के सदस्यों के रूप में रहता है। लेकिन जैसे ही यह पता चलता है कि सतीश एक भंगी है वैसे ही दोनों की विचारधाराएँ बदल जाती हैं। सतीश से उनका अपनापन एक क्षण में ही न जाने कहाँ गायब हो जाता है। अब तो सतीश ही नहीं बल्कि उसका कपड़ा भी उनके लिए अछूत–सा मालूम होता है। कुछ इसी तरह की रूढ़िवादी मानसिकता का स्वरूप अपनी कहानी 'सलाम' के माध्यम से किया है जहाँ कमल उपाध्याय की माँ को जब तक यह पता नहीं होता कि हरीश भंगी है तब तक वह उनके बेटे के अच्छे दोस्तों में शामिल रहता है और वह उसके घर एक पारिवारिक सदस्य के रूप में उठता–बैठता, खाता–पीता रहता है। लेकिन जैसे ही यह पता चलता है कि हरीश के पिता नगर पालिका में सफाई कर्मचारी है अर्थात भंगी है वैसे ही वह आग बबूला हो जाती है गुस्से से लाल होते हुए अपने बेटे कमल के गाल पर एक धमाकेदार थप्पड़ मारते हुए कहती हैं "खबरदार जो आगे से किसी हरामी को दुबारा यहाँ लाया..."[7] कहानी के इस मर्मस्पर्शी वर्णन से समाज और समाज के वर्णवादी मानसिकता का पता चलता है। इस तरह के दृश्यों को कहानियों के माध्ययम से रूपायित करने वाले ओम प्रकाश वाल्मीकि का अपने समाज से कितना जुड़ाव था, इसे समझा जा सकता है। वह केवल दर्शक नहीं बल्कि भुक्तभोगी भी थे। एक ग्रामीण परिवेश में जन्म लेने के कारण गुलामी, शोषण, छलाव, ईष्या, द्वेष, पाखण्ड, ढोंग और जातिगत भेद–भाव जैसी रूढ़िवादी प्रवृतियों को वह बचपन से देखते आ रहे थे। यहाँ पाश्चात्य विद्वान एलियट का

कथन प्रासंगिक ठहरता है, जब वे लिखते हैं "कलाकार जितना उत्कृष्ट होगा, उसमें भोक्ता और स्रष्टा का अंतर उतना ही होगा लेकिन जो भोक्ता ही नहीं वह कलाकार कैसे उत्कृष्ट होगा?"[8] निश्चित तौर पर एलियट की यह चिंता प्रासंगिक है और सत्य भी। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक ऐसे कलाकार हैं जो उस समाज में रहते हुए वहाँ की एक–एक जीवनपरक विडंबनाओं को न केवल देखा ही बल्कि भोगा भी। इसीलिए वे अपने लेखन से इन रूढ़िवादी व अमानवीय प्रवृतियों पर गहरा कटाक्ष कर पाते हैं तथा समाज के दोमुँहे चेहरे का पर्दाफाश करते हैं जो सदियों से समाज में एक वर्ग के साथ जानवरों जैसा बर्ताव करता रहा है, उसे कभी भी मनुष्य की श्रेणी का माना ही नहीं। समाज की इस विद्रूपता को देखते हुए ही उन्होंने लिखा है कि मनुष्य ही सर्वोपरि था, है और रहेगा। इसलिए वही साहित्य वास्तव में सबका साहित्य हो सकता है जो मानवतवादी हो, मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता देता हो।

छलावा तो दलित समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति का होता रहता है चाहे वह सामाजिक स्तर पर हो या धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्तर पर। गाँव–गाँव की कहावत भी रही है जिसकी लाठी उसी की भैंस। निश्चित तौर पर यह कहावत बहुत से आयामों को खोलती है। समाज में एकाधिराज रूप से शासन करने के लिए लाठी हमेशा से उच्च वर्ग के लोगों के पास रही है। वह इसका फायदा उठाते हुए अपने नीचे की जातियों का शोषण करता रहा है। ब्राहमण, क्षत्रियों का। क्षत्रिय, वैश्यों का और वैश्य, शूद्रों का। लेकिन इन सबमें शूद्रों का शोषण चौतरफा होता है। जहाँ उसके लिए न कोई दुःख बाँटने वाला मिलता है और न सहारा देने वाला। इसलिए वह अपने ऊपर होने वाले अत्याचार को अपनी नियति मानकर आजीवन भोगता रहता है। लेकिन जब कोई इस अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश करता है तब या तो उसे रहष्यमयी षडयंत्रों के द्वारा हमेशा–हमेशा के लिए चुप करा दिया जाता है या स्वर्णवादी चक्रव्यूह में डाल दिया जाता है, जहाँ से निकल पाना लगभग नामुमकिन होता है। 'यह अंत नहीं' कहानी ओमप्रकाश वाल्मीकि की इसी प्रकार के षड्यंत्रों का पर्दाफाश करती है जहाँ बिरमा जैसी न जाने कितनी दलित लड़कियाँ सचीन्दर जैसे उच्च जाति के लड़कों द्वारा छेड़–छाड़ व बलात्कार का शिकार हो जाया करती हैं और अपनी इज्जत को ढकने के लिए ये चुप रहती हैं। लेकिन बिरमा चेतनाप्रद होने के कारण अपने ऊपर हुए अत्याचार का बदला लेने के लिए पुलिस चौकी और अंततः पंचायत में भी जाती है ताकि सचीन्दर या उसके जैसी मानसिकता वाले ऐसी कोई भी हरकत करने से पहले दस बार सोचें। सचीन्दर के पिता तेजभान का यह शब्द निश्चित रूप से सवर्णवादी मानसिकता को दर्शाता है जब वह बिरमा के पिता मगलू से आँखे तरेरते हुए कहता है –"मंगलू तू मुझे अच्छी तरह पिछाणे है। फिर भी ऐसी हरकत की है। क्या समझता है पंचायत हमें फाँसी पर चढ़ा देगी। पंचायत है क्या? हमारे पाँव की जूती। प्रधान कोई भी रहे नकेल हमारे हाथ में होती है। जा, जाके अपनी बेट्टी कू समझा। कुछ ऐसा–वैसा हो गिया तो मुझे दोस मत देणा... आगे तेरी मर्जी।"[9] निश्चित तौर पर तेजभान का एक–एक शब्द समाज के उस खोखलेपन को निरूपित करता है जिसमें सवर्णवादी मानसिकता के संस्थापकों का निवास दिखाई पड़ता है। तभी तो युवा पीढ़ी के दलित बच्चे जो किसन या बिरमा जैसी मानसिकता रखते हुए इस व्यवस्था के खिलाफ लड़ने के लिए खड़े होते हैं उन्हें इन वर्णवादी षडयंत्रों की जाल में फँसाकर उलझा दिया जाता है या उन्हें खौफ दिखाकर शांत करवा दिया जाता है। चाहे वह कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से हो या आदलती प्रक्रिया के द्वारा।

"विद्रोह तभी होता है जब कोई चीज गले में पत्थर की तरह लटक जाती है।"[11] निश्चित रूप से गिरिराज किशोर का यह कथन यथार्थपूर्ण ठहरता है। दलित समाज के सामने जाति एक ऐसा प्रश्नचिन्ह है जहाँ वह हमेशा से अपने साथ छलाव महसूस करता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस प्रश्न से अच्छी तरह परिचित थे। वे दलित समुदाय के साथ होने वाले एक–एक षड्यंत्र को अच्छी तरह समझते थे। इसीलिए वे अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में जागृति पैदा करना चाहते थे। वे जानते थे कि इस व्यवस्था से लड़ने के लिए शिक्षा व जागरूकता दोनों का होना आवश्यक है। इसी कारण उनकी सभी कहानियों में वर्णवादी व्यवस्था व ब्राहमणवादी विचारधारा की साजिशों का पर्दाफाश हुआ है। साथ–साथ उस व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध भी। वे अपने दुश्मनों को अच्छी तरह पहचानते हैं तथा उनके विविध षडयंत्रों को भी। इसीलिए उनसे लड़ने के लिए वे सर्वप्रथम अपनी कमजोरियों को दूर करना सबसे पहला कदम मानते हैं। उनका मानना है कि हमारा दुश्मन केवल आर्थिक तौर पर ही मजबूत नहीं है बल्कि बौद्धिक रूप से वह बहुत चालक है। इसलिए इस संघर्ष के लिए शिक्षित होने के साथ–साथ एकजुटता की भी जरूरत है तभी हम उनके षडयंत्रों को ठीक से पहचान पाएंगे और उनसे प्रतिरोध कर पाएंगे।

संदर्भ –

1– संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, सं.– डॉ. रामकुमार वर्मा, पृष्ठ सं.– 512

2– दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2010, पृष्ठ सं.– 42

3– हिंदी दलित साहित्य का विकास, सं.– डॉ. प्रमोद कुमार कोवप्रत, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2017, पृष्ठ सं. – 15

4– दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2010, पृष्ठ सं.–44

5– सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ सं.– 16

6– वही, पृष्ठ सं.– 35

7– वही, पृष्ठ सं.– 15

8– चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, सं.– डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन': डॉ. देवेन्द्र चौबे, पृष्ठ सं.– 118

9– घुसपैठिये, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2011, पृष्ठ सं.– 27

10– दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2011, पृष्ठ सं.– 28

11– दलित विमर्श संदर्भ गाँधी, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, संस्करण– 2003, पृष्ठ सं.–36

शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली

मदरसा शिक्षा प्रणाली की आलोचनाओं का विश्लेषणात्मक वर्णन

आज़म सिद्दीक़ी

पिछले दो दशक में भारतीय उपमहाद्वीप में मदरसों की जो छवि प्रस्तुत की गई है उसने आमजन के मस्तिष्क में मदरसों के विषय में ज़बरदस्त नकारात्मकता भर दी है। आम लोगों का मानना है कि इस्लामिक मदरसे शिक्षण संस्थान न होकर ऐसे केंद्र हैं जहां पर न तो उचित शिक्षा का प्रावधान है और न ही वहां शिक्षार्थ छात्रा–छात्राओं का कोई भविष्य है। नकारात्मकता का स्तर यह है कि कुछ लोग आए दिन मदरसों पर आतंकवाद को बढ़ावा देने का आरोप लगते रहते हैं जो वास्त्व में एक निराधार बात है। सच यह है कि भारतवर्ष में मदरसे सैकड़ों सालों से बग़ैर किसी लोभ और लालच के निशुल्क शिक्षा देकर समाज में व्याप्त अशिक्षा को दूर करके लोगों को अच्छा नागरिक बनाने में सहायता कर रहे हैं।

महान समाज सुधारक श्री राजाराम मोहन राय, भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेंद्र प्रसाद, महान शिक्षाविद् डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा एवं महान लेखक श्री मुंशी प्रेमचंद जैसी विभूतियों ने अपनी आरंभिक शिक्षा मदरसों से प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त मदरसों से पढ़कर निकले हज़ारों स्वतंत्रता सैनानियों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और अपने प्राणों की आहुति दे दी।

मदरसों में आतंकवाद और कट्टरवाद की शिक्षा देने का आरोप लगाने वालों के दावों के संबंध में यदि बात की जाए तो सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में मुसलमानों की कुल आबादी का 4 प्रतिशत मदरसों में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। यदि हज़ारों लोग हर साल मदरसों से भेदभाव, नफरत और आतंकवाद की शिक्षा लेकर समाज में प्रवेश करते तो हर तरफ भय और आतंक का माहौल होता। परंतु वास्तिवकता कुछ और है। हम सभी जानते हैं कि देश में व्याप्त अधिकांश मदरसों की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है क्योंकि अधिकांश मदरसे बग़ैर किसी सरकारी सहायता के चलाए जाते हैं और अपने व्यय मुसलमानों द्वारा दिए गए दान इत्यादि से पूरा करते हैं। ऐसे में मदरसों में कार्यरत शैक्षिक एवं ग़ैरशैक्षिक स्टाफ को बहुत कम वेतन मिलता है। इन्हीं मदरसों से निकलकर मस्जिदों के इमाम व मुअज़्ज़िनों की नौकरी करने वाले लोगों का वेतन भी और संस्थानों की तुलना में बहुत कम है जो आजकल की महंगाई के दौर में गृहस्थी चलाने के लिए पर्याप्त नहीं है। परंतु शायद ही इन लोगों ने कभी वेतनवृद्वि को लेकर कभी कोई आवाज़ उठाई हो या फिर कोई उग्र आंदोलन किया हो। इससे पता चलता है कि मदरसों में नफ़रत, अराजकता एवं आतंक की नहीं अपितु संयम, प्रेम और भाईचारे की शिक्षा दी जाती है। इसके विपरीत जो प्रोपेगंडा मीडिया द्वारा मदरसों के विषय में फैलाया जा रहा है वह झूठा और राजनीति से प्रेरित है। वास्तव में देश की स्वतंत्रता और विकास में मुसलमानों विशेषतः मुस्लिम विद्वानों का योगदान भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना कि और समुदायों का। मदरसों से निकलने वाले उलेमा ने हमेशा समाज को प्रेरणा देने का काम किया है। इतिहास साक्षी है कि मुसलमानों ने लगभग 800 साल इस देश पर हुकूमत की। इन 800 सालों में न्याय और विकास के माध्यम से भाईचारे की जो व्यवस्था मुस्लिम शासकों ने भारतवर्ष में विकसित की उसको पार पाना अंग्रेज़ सरकार के लिए आसान नहीं था। जब अपनी साज़िशों में अंग्रेज़ सफल न हो सके तो देश के भाईचारे के ताने–बाने को तोड़ने के लिए उनको झूठ का सहारा लेना पड़ा। फूट डालो और शासन करो की अपनी योजना को क्रियान्वित करने में अंग्रेज़ों को वर्षों लगे।

ईस्ट इंडिया कंपनी जिसका वास्तिवक उद्देश्य भारत को गुलामी की ज़ंज़ीरों में जकड़कर यहाँ से भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और निर्यात करना था। ईस्ट इंडिया कंपनी के नापाक इरादों को सर्वप्रथम भांपने वाले मुस्लिम विद्वान थे जिनका संबंध मदरसों से था। उनका नाम मौलाना शौकत अली बस्तवी था जो कि दारूल उलूम देवबंद में तफसीर के प्रोफेसर हैं, दारूल उलूम की मासिक पत्रिका **''महानामा दारूल उलूम''** के सितंबर 2006 के अंक में लिखते हैं कि देश में ईस्ट इंडिया कंपनी के फैलते हुए जाल और बढ़ते हुए असर व रसूख़ को सबसे पहले अगर किसी ने महसूस किया तो वह मौलाना शाह वलीउल्लाह देहलवी थे। आपने पूरी दूरअंदेशी के साथ इस्लाह के उसूल बयान किए। तरीक़ेकार की निशानदेही फरमाई और देशवासियों के बुनयादी हक़ पामाल करने वाले निज़ामे हुकूमत को दरहम बरहम कर देने की तलक़ीन की और इसके लिए ताक़त के इस्तेमाल पर भी ज़ोर दिया। इनकी योजना के मुताबिक़ बड़े बेटे शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस ने ब्रितानी साम्राज्य के खिलाफ़ जद्दोजहद का योजनाबद्ध आग़ाज़ किया। अंग्रेज़ों के खिलाफ ऐतिहासिक फतवा जारी फरमाया और मुल्क के दारूल हरब होने का ऐलान किया जो अंगेज़ों के खिलाफ़ जिहाद के फतवे जैसा था। यह फतवा जंगल की आग की तरह मुल्क के कोने कोने में पहुंच गया। 1818 में आमजन को तैयार करने के लिए मौलाना सैयद अहमद शहीद, मौलाना अब्दुल हयी बुढ़ानवी, मौलाना इस्माइल देहलवी के मशवरे से एक जमाअत बनाई गई जिसने देश के कोने–कोने में पहुँच कर लोगों में धार्मिक और राजनीतिक जागरूकता पैदा की। फिर अंग्रेज़ों से जिहाद के लिए 1820 में मौलाना सैयद अहमद शहीद रायबरेलवी के नेतृत्व में सैनानियों को रवाना किया गया। इन्होंने जंगी विशेषताओं की बुनियाद पर अपना केंद्र सूबा सरहद को बनाया। 1857 की जंगे आज़ादी के लिए सैयद साहब के साथियों ने फ़िज़ा हमवार करने और लोगों को तैयार करने में मुख्य भूमिका निभाई। हज़ारों उलेमा ए इकराम (मुस्लिम विद्वानों) ने सभी धर्मों एवं पंथों के लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और हँसते–हँसते अपने प्राणों की आहुति दे दी। वर्ष 1920 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन को सफल बनाने के लिए जमीयत उलेमा–ए–हिंद ने अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ फतवा जारी किया जिसके बाद मुसलमानों ने सरकारी नौकरियों एवं सरकारी पदों से त्यागपत्र दे दिया।

वर्तमान काल में मदरसों का महत्वः उपरोक्त वर्णन से यह तो पता चलता है कि भारतवर्ष की दासता काल में अशिक्षा को दूर करने एवं भारतवर्ष को स्वतंत्रता दिलाने में मदरसों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परंतु प्रश्न यह उठता है कि आज के प्रतिस्तर्धा के युग में पारंपरिक एवं धार्मिक शिक्षा जो मदरसों में दी जाती है उसका कोई महत्व है या नहीं। क्या विज्ञान और तकनीक के इस युग में मदरसे शिक्षा के क्षेत्र में कुछ योगदान कर रहे हैं या फिर मदरसों द्वारा दी जा

रही परंपरागत एवं धार्मिक शिक्षा की आज कोई आवश्यकता नहीं है।

सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है कि भारतीय संविधान के अनुसार हर नागरिक को अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करने और अपने धर्म और पंथ का प्रचार और प्रसार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। देश की स्वतंत्रता संग्राम के समय में जो मदरसे भारतीय उपमहाद्वीप में स्थापित किए गए उनकी स्थापना के तीन प्रमुख उद्देश्य थे। प्रथम अंग्रेज़ों के विरूद्व लामबंद होकर प्रबंधकुशल लड़ाई लड़ना, दूसरा शिक्षा के माध्यम से समाज के अंदर से अज्ञानता का अंधकार दूर करना और तीसरा उद्देश्य भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लाम धर्म की शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार करना। देश की स्वतत्रंता से लेकर आजतक मदरसे मुस्लिम बच्चों को शिक्षित करके न सिर्फ देश की अज्ञानता के विरूद्व लड़ाई में सहयोग कर रहे हैं अपितु लोगों में धार्मिक शिक्षा को जिंदा रखकर उन्हें अच्छा नागरिक और देशभक्त बनने की प्रेरणा दे रहे हैं।

मदरसों में आधुनिक शिक्षा की माँगः कुछ तथाकथित बुद्विजीवी प्रायः मदरसों की घोर आलोचना करते नज़र आते हैं। उनका तर्क है कि मदरसों में विज्ञान और तकनीक की शिक्षा नहीं दी जा रही है जिससे बच्चों का भविष्य खराब हो रहा है। स्पष्ट है कि ऐसे लोगों की आलोचना अतार्किक है क्योंकि वर्तमानकाल में मदरसों का उद्देश्य धार्मिक शिक्षा देना है न कि आधुनिक शिक्षा देना। आधुनिक शिक्षा के लिए हज़ारों सरकारी एवं गैर सरकारी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा केंद्र देशभर में विद्यमान हैं जिनमें मुसलमानों सहित किसी भी धर्म एवं पंथ का बच्चा बग़ैर किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त कर सकता है। अतः जो भी मुस्लिम बच्चा आधुनिक शिक्षा प्राप्त करना चाहता है वह इन स्कूल–कालेजों में जाता है और जिसको धार्मिक शिक्षा प्राप्त करनी होती है वह मदरसों का रूख करता है। ऐसे में आलोचकों की यह माँग कि मदरसों में विज्ञान और तकनीक की शिक्षा दी जाए उतना ही अतार्किक है जितना कि स्कूल–कालेजों में विशिष्ट धार्मिक शिक्षा की माँग करना। जहाँ तक प्रश्न आजीविका अर्जन का है, उल्लेखनीय है कि देश के लगभग सभी बड़े मदरसों में छात्रों को विशिष्ट अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी और धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ कौशल विकास का प्रशिक्षण भी दिया जाता है जिससे शिक्षा–दीक्षा के बाद यदि कोई छात्र अपना व्यवसाय करना चाहे तो वह प्रशिक्षत हो सके। आश्चर्य की बात नहीं कि सरकार ने हाल ही में इस प्रशिक्षण प्रणाली का प्रयोग उच्च शिक्षण संस्थानों में कौशल विकास केंद्रों के माध्यम से आंरभ किया है जबकि मदरसों में यह प्रशिक्षण प्रणाली पिछले सत्तर वर्षों से सफलतापूर्वक कार्यरत है। जहाँ तक सवाल संसारिक विषयों की प्राथमिक शिक्षा का है तो यह जानना ज़रूरी है कि समस्त छोटे व बड़े मदरसों में अंग्रेज़ी, गणित और कंप्यूटर विषयों की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है।

मदरसा शिक्षण प्रणाली एवं कार्यप्रणाली पर एक नज़रः जो लोग मदरसों की कार्यप्रणाली से अनजान हैं वे लोग मदरसों को निम्नस्तर शिक्षण केंद्रों के रूप में गिनते हैं। मदरसों की कार्यप्रणाली का स्तर जानने के लिए पूरी व्यवस्था का ज्ञान होना अनिवार्य है। आधुनिक शिक्षण संस्थानों की तरह मदरसों को तीन तरह की श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहले वे मदरसे जो कि प्राथमिक शिक्षा दे रहे हैं। इन मदरसों में पवित्र कुरआन के नादिरा; देखकर पढ़ना, हिफ्ज़; कंठस्थ करना–के अतिरिक्त उर्दू, हिंदी, हिसाब, अंग्रेज़ी विषयों की शिक्षा दी जाती है। दूसरे वे मदरसे हैं जहाँ पर कुरआन, हदीस और अरबी भाषा की विशेष शिक्षा दी जाती है। उच्च स्तर के मदरसों में कुरआन, हदीस, अरबी, फारसी भाषा, दर्शनशास्त्र और इस्लामिक विधिशास्त्र की विशिष्ट शिक्षा दी जाती है। ये मदरसे उच्च इस्लामिक शिक्षा केंद्र कहलाते हैं।

इन उच्च शिक्षण केंद्रों का प्रमुख मोहतमिम (कुलपति) कहलाता है। प्रत्येक मदरसे की एक कार्य परिषद, शैक्षणिक परिषद, एवं स्थायी समिति होती है जिनका अध्यक्ष कुलपति होता है। अलग–अलग विभागों के लिए विभागाध्यक्ष की नियुक्ति होती है जो कि सीधे कुलपति को रिपोर्ट करते हैं। विश्वविद्यालयों की तरह यहाँ पर नाज़िमे तालीमात, नाज़िमे अहतमाम (कुलसचिव), नाज़िमे इम्तहानात (परीक्षा नियंत्रक), नाज़िमें दारूल इक़ामा (प्रोवोस्ट) आदि के पद होते है जिनकी नियुक्ति कुलपति द्वारा इनकी योग्यता एवं अनुभव के आधार पर की जाती है।

क्या देश में विद्यमान मदरसों की संख्या व्यापक हैः कुछ आलोचकों का कहना है कि देश में विद्यमान मदरसों की सख्या व्यापक है, तथा मुसलमानों को और मदरसे स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। इसके स्थान पर मुस्लिम समाज को स्कूल कालेजों की स्थापना करनी चाहिए। ऐसे वक्तव्यों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि आलोचकों का यह कथन अप्रासंगिक है क्योंकि देश में मुसलमानों की अधिकारिक जनसंख्या का आंकड़ा चौदह प्रतिशत है जबकि सरकारी आंकड़े के अनुसार इनमें से कुल चार प्रतिशत मुस्लिम ही मदरसों में जा पाते है। धरातल पर यदि स्थिति का जायज़ा लिया जाए तो हम पाएंगे कि अधिकांश मदरसे दिल्ली, उत्तर प्रदेश व आसपास के क्षेत्रों में विद्यमान हैं जहाँ पर देश के कोने–कोने से छात्र–छात्राएं शिक्षा प्राप्ति के लिए आते हैं। यदि पर्याप्त संख्या में देश के हर कोने में मदरसे होते तो इन छात्रा–छात्राओं धार्मिक शिक्षा प्राप्ति के लिए हज़ारों किलोमीटर विस्थापन नहीं करना पड़ता। ऐसे मुस्लिम बाहुल क्षेत्र जहाँ आधुनिक शिक्षण संस्थान जिनमें प्राथमिक स्कूल एवं कॉलेजों का अभाव है वहाँ स्कूल कालेजों की स्थापना और इनका प्रबंध केंद्र एवं राज्य सरकारों की ज़िम्मेदारी है। चूंकि धार्मिक शिक्षा का प्रबंध करना किसी भी समुदाय का पूर्णतः निजी मामला है इसलिए इस पर आने वाला व्यय समुदाय विशेष को स्वयं उठाना पड़ता है। यही बात मदरसों पर भी लागू होती है। देश के अधिकांश मदरसे अपना व्यय समुदाय द्वारा एकत्र दान से पूरा करते हैं और किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता प्राप्त नहीं करते। ऐसे में धार्मिक शिक्षण संस्थानों की संख्या की तुलना आधुनिक शिक्षण संस्थानों की संख्या से करना उचित नहीं होगा।

सरकारी सहायता प्राप्त करने में हिचकः यह बात सही है कि देश में विद्यमान अधिकांश मदरसे विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा स्थापित मदरसा एजुकेशन बोर्ड द्वारा प्रदान की जाने वाली सरकारी सहायता प्राप्त करने से परहेज़ करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मदरसा प्रबंधन को यह भय रहता है कि यदि सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए उनका मदरसा एजुकेशन बोर्ड के अंतर्गत आता है तो ऐसा करके उसकी स्वायत्ता खतरे में पड़ सकती है। ऐसे में मदरसों को अपने पाठ्यक्रम से भी समझौता करना पड़ेगा और सरकार द्वारा तयशुदा पाठ्यक्रम को पढ़ाने एवं क़ानूनों का पालन करने के लिए

बाध्य होना पड़ेगा। यही वजह है कि मदरसे सरकार से सहायता प्राप्त करने के बजाए मुसलमानों द्वारा एकत्रित दान को ज्यादा पसंद करते हैं।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि कई सौ वर्षों के अनुभव के आधार पर विकसित मदरसा प्रबंध एवं शिक्षा प्रणाली किसी भी आधुनिक शिक्षण संस्थान की तरह ही प्रबंध निपुण शिक्षण व्यवस्था है और केवल अज्ञानता एवं दुष्प्रचार से अर्जित सूचना के आधार पर मदरसों को कटघरे में खड़ा करना और इनकी आलोचना करना अनुचित है। यदि सरकार मदरसों की आर्थिक स्थिति के प्रति वास्तव में गंभीर है तो उसे बग़ैर किसी भेदभाव और बग़ैर किसी असाधारण शर्त के मदरसों को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिए। शिक्षा की गुणवत्ता जाँच और सरकारी आर्थिक सहायता के दुरूपयोग रोकने की बात है तो इसके लिए मदरसों पर भी वही मापदंड अपनाया जाना चाहिए जो कि आधुनिक शिक्षण संस्थानों पर अपनाया जाता है। परंतु पाठ्यक्रम की स्वायत्ता मदरसों को दी जानी चाहिए। जहाँ तक बात मदरसों में शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए स्वस्थ परिचर्चा की है तो लोकतंत्र में ऐसी परिचर्चाओं एवं सुझावों का सदैव सम्मान किया जाता है।

वैयक्तिक सहायक, विधि संकाय, जामिइ

–डॉ. सत्य प्रकाश प्रसाद

टूटी मूर्ति

पुरानी अलमारी में, कुछ किताबों के बीच,
बिखरी पड़ी एक मूर्ति के क्षत–विक्षत अंग
न जाने कब से वहीं धूल खा रही है
शायद, कुछ युगों से या फिर कुछ दिनों से,
कोई तो होगा जिसे इससे नफरत होगी
या फिर इससे मोहब्बत...?
खैर, उन बिखरे क्षत–विक्षत अंगों को
बड़े करीने से छिपाया गया था।
किताबों के बीच उनके भार से दबी,
मानो दफन कर दी गई हो किसी आस्था को।
कोई तो होगा जिसने पूरी सिद्दत से,
बनाया होगा उस बेजान मूर्ति को,
कोई कल्पना कभी तो हकीकत हुई होगी।
पर आज भी, वो बिखरे हुए अंग तो पूरे ही दिखते हैं।
जोड़ा जा सकता है, एक सूरत उकेरी जा ही सकती है
कहीं कोई ठीक–ठाक गोंद मिल जाए तो टूटी मूर्ति को जोड़ दूँ,
किताबों के ऊपर नहीं
अपितु उसे उनके समानांतर तो रख ही दूँ!

सहायक प्राध्यापक,
अनुप्रयुक्त विज्ञान व मानविकी विभाग
जामिइ

भेड़ चाल

आँखों पे पड़ी है पट्टी, अजब सी चाल है,
एक के पीछे हजार, ऐसा ही बाजार है।
धुंधली है पगडंडी, फिर भी कतार है,
न सिकन न थकान, कैसी ये बयार है?
जी, ये भेड़ चाल है।

न सोच, न विचार, फिर भी जोश का संचार है,
चेहरों पर चेहरे की बेजोड़ जुगाड़ है।
अभिव्यक्ति ही नहीं, यहाँ शब्द भी उधार है,
आगे निकलने की नहीं, पीछे चलने का खुमार है।
जी, ये भेड़ चाल है।

हाँ में हाँ और ना में ना है, ऐसे बहुत से किरदार हैं,
कुछ भाव विभोर तो कुछ ज्यादा ही बीमार हैं।
कुछ मजबूर तो कुछ के जीवन का यही आधार है,
प्रत्यक्ष को परोक्ष करने का व्यवहारिक शिष्टाचार है।
जी, ये भेड़ चाल है।

मानव का ईश्वरीकरन से दुखी ये संसार है,
ये झूठ, फरेब और प्रपंच का प्रचार है।
तोड़ो इस अदृश्य जंजीरों को, ये अवसाद है।
रुको, सोचो, हिम्मत करो और पूछो...
जी, ये कैसी भेड़ चाल है?

सहायक प्राध्यापक,
अनुप्रयुक्त विज्ञान व मानविकी विभाग
जामिइ

कोरिया का आधुनिक समाज

प्रो. एम.पी. शर्मा

मैं कोरिया में कुल मिलाकर चार साल तक रहा। इस बीच कोरिया के सकता है कि पिछले लगभग तीस–चालीस वर्षों में कोरिया के समाजसमाज को निकट से देखने का अवसर मिला। कोरिया में कई स्थानों की यात्राएं की। विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ–साथ अन्य अनेक लोगों से भी मिला। कोरिया के लगभग सभी बौद्ध मंदिरों में गया। कुछ मित्रों के घर भी जाना हुआ। वहाँ जो अनुभव हुए उनके आधार पर कहा जा के बहुत तेजी से प्रगति की है। आज की पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की तुलना में बहुत तेज है। अन्य सामाजिक, आर्थिक परिवेश के बदलने का प्रभाव कोरियाई युवाओं पर हर तरफ दिखाई देता है। सभी लगभग भाग–दौड़ की जिन्दगी सी गुजार रहे हैं। नई पीढ़ी बदल रही है अनेक मामलों में। नई पीढ़ी की खान–पान की आदतें भी भिन्न हैं। पुरानी पीढ़ी की तुलना में। भोजन के संदर्भ में मैंने इस देश में एक बात अनुभव की है, वह यह है कि खाते समय लोग बहुत सारा खाना बर्बाद कर देते हैं। कई बार तो ऐसा लगता है कि जैसे इस वेस्टेज को भी 'स्टेटस' से जोड़ दिया गया हो। अनेक बार यहाँ के होटलों में खाना खाते समय नई पीढ़ी को भोजन के प्रति बहुत लापरवाह देखा है। हमारे यहाँ ऐसा नहीं है। यदि है भी तो केवल पार्टियों या बड़े समारोहों में जहाँ लोग अपनी–अपनी प्लेट में खूब सारा खाना ले लेते हैं और उसमें से स्वाद के अनुसार थोड़ा खाने के पश्चात बाकी छोड़ देते हैं। यहाँ भी दावतों में प्रायः यही देखने को मिलता है। कोरिया के घरों में जाने का उतना अनुभव नहीं रहा है क्योंकि कोरिया में मेहमान या मित्र को घर बुलाने का रिवाज कम ही है। बहुत निकट संबंधी ही घरों पर आमंत्रित किए जाते हैं। घरों की अपेक्षा यहाँ मेहमान को होटलों में खाना खिलाने के लिए ले जाने की परंपरा अधिक है। वैसे भी कोरियाई लोग घर में खाना बनाने की बजाए बाहर जाकर भोजन करना अधिक सुविधाजनक समझते हैं। संभव है यह वहाँ की दिन प्रतिदिन व्यस्त होती जा रही जिंदगी के कारण भी हो। पति और पत्नी दोनों बाहर काम करते हैं और यदि वे बाहर घूमने न जाएँ या पति के लिए रोज ही खाना घर पर बनाने की बाध्यता हो तो पारिवारिक तनाव का वातावरण बन सकता है। इसलिए दोनों की मर्जी से सप्ताहांत पर तो अवश्य ही बाहर जाने का कार्यक्रम होता है। मैंने अपने एक पुराने विद्यार्थी से उसकी मौजूदा स्थिति के बारे में पूछा तो बहुत दिलचस्प उत्तर मिला। वह मुझसे मिलने आया और साथ में अपनी पत्नी को भी लाया।

हम एक अच्छे रेस्तरां में डिनर के लिए गए। वह अपनी पत्नी के साथ आया था। बच्चा साथ में नहीं था। मैंने पूछा कि 'इस समय आपका बच्चा किसके पास है' इस पर मेरे उस विद्यार्थी ने बताया कि मेरी पत्नी की माँ घर पर आई हैं और वही इस समय बच्चे के पास हैं। वरना जब भी हम लोग बाहर जाते हैं तो बच्चे को साथ ही ले जाते हैं। वैसे मेरे उस छात्र की पत्नी काम नहीं करती है, वह घर पर ही रहती है। यद्यपि वह काफी पढ़ी–लिखी है लेकिन बच्चे के कारण अभी नौकरी नहीं करती। मैंने पूछा कि 'सप्ताहांत में आपका क्या कार्यक्रम होता है' इस पर लड़के का जवाब था कि 'सप्ताहांत में प्रायः तो मैं घर पर ही रहता हूँ। पत्नी को बाकी दिनों बाहर जाने का मौका नहीं मिलता और हमेशा हम बच्चे को साथ भी नहीं ले जा सकते। इसलिए मैं घर पर बच्चे को संभालता हूँ और पत्नी अपनी मित्रों के साथ घूमने जाती है। मैं अपनी पत्नी के लिए दो दिन घर पर काम करता हूँ। मुझे अपने उस छात्र का पूरा संदर्भ बहुत रोचक लगा।

खैर, विद्यार्थी के साथ पार्टी का प्रसंग चल रहा था। उसने साफ–साफ बताया कि एक मामूली–सा परदा रहता है हमारे और पेरेंट्स के बीच। वैसे भी हमारे पेरेंट्स हमें पूरी आजादी देते हैं लेकिन उनके लगाए कुछ अंकुश भी हमारे ऊपर रहते हैं। कोरिया में लड़कों और लड़कियों के बीच दोस्ती सामान्य–सी बात है। विद्यालय में पढ़ाई के दौरान ही आमतौर पर मित्रता हो जाती है और बहुत अच्छी बात यह है कि किशोरावस्था में बने उनके ये आपसी संबंध अधिकांशतः शादियों में परिवर्तित हो जाते हैं। हालांकि सबके साथ ऐसा हो यह जरूरी नहीं। अनेक बार यह संबंध टूट भी जाते हैं। लेकिन सम्बन्ध टूटना जैसी कोई कोई प्रवृत्ति नहीं है। अनेक बार ये प्रेम संबंध विद्यालय, पार्क, रेस्तरा, सिनेमा हॉल तक ही सीमित रहते हैं। लड़की या लड़के के परिवार तक नहीं पहुँच पाते। इसका कारण एक तो यह है कि परिवार की भी इन संबंधों के बारे में अपनी राय होती है। वे कभी–कभी इन संबंधों को बिल्कुल नापसंद करते हैं। अभिभावक उन संबंधों को अपने खुद के बनाए दायरे में परखते हैं। वस्तुतः दोनों पीढ़ियों के बीच बना समझदारी का यह दायरा काफी अंतर वाला होता है। जीवन के प्रायः हर क्षेत्र में यह अंतर नजर भी आता है। खान–पान, रीति–रिवाज़, परंपरा, विवाह–संबंध आदि अनेक बातों में। पुरानी पीढ़ी ने तो अनेक तरह के अभावों में भी दिन गुजारे हैं। आरंभ में आवश्यक वस्तुओं का अभाव भी रहा है। इसलिए वे पुराने के प्रति लगाव रखते हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग खाना खाते समय ध्यान रखते हैं कि वह बेकार या व्यर्थ न जाए। वे नई पीढ़ी के समान

अपव्यय नहीं करते। एक मायने में उन्हें मितव्ययी या कंजूस के बीच का कहा जा सकता है। पर ये सब बातें दो पीढ़ी पहले की हैं। यानी द्वितीय विश्वयुद्ध के आसपास की स्थिति कोरिया में वैसी नहीं थी।

कोरिया में आजादी के बाद विदेशी निवेश बहुत तेजी से हुआ। शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़े और लोगों का जीवन स्तर भी सुधरा। कुल मिलाकर दूसरी पीढी की स्थिति और मानसिकता बदली। मेरे एक विद्यार्थी ने बताया कि 'मेरे और मेरे पिताजी की मानसिकता में बहुत अंतर है। हम दोनों की सोच में बहुत अंतर है। वह हमेशा मुझे उपदेश ही देते रहते हैं। मैं मन से तो उन उपदेशों को ठीक समझता हूँ लेकिन उन पर अमल नहीं कर पाता। जो मेरे साथी करते हैं मैं भी वही करना चाहता हूँ।' उसने यह भी बताया कि उसकी एक प्रेमिका भी है यानी साथ में पढ़ने वाली लड़की। वह अर्थशास्त्र में ऑनर्स कर रही है और यह लड़का हिंदी में। दोनों की मित्रता स्कूल स्तर से हुई। अब भी बनी हुई है। लड़की के घरवाले यद्यपि लड़के को पसंद नहीं करते और लड़के के घरवाले यह चाहते ही नहीं कि उनका लड़का बिना उनकी मर्जी के किसी लड़की के साथ घूमे। परिणाम यह होता है कि दोनों केवल विश्वविद्यालय कैंटीन तक अपने संबंध को बनाए हुए हैं। मैंने विद्यार्थी से जब पूछा कि इस तरह कब तक चलेगा। आप दोनों अपने–अपने घरवालों को मनाने का प्रयास क्यों नहीं करते? इस पर लड़के ने बताया कि वह नहीं मानेंगे। उसने कहा कि 'वस्तुतः मेरी पूरी पढ़ाई होने तक मैं उन पर ही निर्भर हूँ वे ही सब खर्च उठाते हैं। मैं जब नौकरी करना शुरू करूँगा तो आत्मनिर्भर हो जाऊँगा और तब मेरी निर्णय लेने के स्तर पर बेहतर स्थिति होगी। तब फिर मेरे पिताजी भी शायद मेरी बात आसानी से मान जाएँगे।

'कोरियाई समाज में आत्मनिर्भर युवाओं के विवाह आदि की कोई समस्या नहीं है। लेकिन जीवन–यापन कोरिया में बहुत महँगा है। बच्चों का लालन–पालन और उनकी शिक्षा बहुत महँगी है। इसलिए लोग परिवार बढ़ाना नहीं चाहते। शादियाँ बहुत देरी से होती हैं और बच्चे और भी देरी से। माना कि कोरिया में भारत जैसी स्थिति नहीं है फिर भी अनेक बातों में समानता दिखाई देती है। वैसे ध्यान से देखने पर पता चलता है कि हमारी नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से कटती–सी दिखाई देती है। लेकिन कोरिया में ऐसा नहीं है। वे अपनी जड़ों के प्रति हमारी तुलना में बहुत प्रतिबद्ध नजर आते हैं। वहाँ आज भी संयुक्त परिवार हैं। बच्चे अपने माता–पिता और दादा–दादी के पास वहाँ के प्रसिद्ध त्यौहार 'छूसक' पर तो अवश्य ही जाते हैं। अन्य अनेक अवसरों पर परिवार में मिलने–जुलने का रिवाज है। इसलिए दूर–दूर से लोग आकर अपने परिवार के साथ इस त्यौहार को मनाते हैं। मैं ऐसे अवसरों पर जब कोरियाई विद्यार्थियों से सवाल करता था कि 'आप लोग 'छूसक'कैसे मानते हैं?' तो उनका उत्तर होता था कि 'हम यह पर्व अपने परिवार के साथ मनाते हैं। इस अवसर पर घर में तरह–तरह का स्वादिष्ट खाना बनाया जाता है, पकवान और मिठाइयाँ बनाई जाती हैं तथा पितरों को याद किया जाता है। कोरिया में मिठाई कि वैसी किस्में नहीं हैं जैसी हमारे यहाँ हैं। वहाँ की अधिकांश मिठाइयाँ चावल से बनी होती हैं जो खाने में कभी–कभी स्पंज जैसी लगती हैं। उन पर ऊपर से तिल जैसा कुछ चिपका रहता है और वे प्रायः रंगीन होती हैं। दूध से बनी मिठाई खाने का वहाँ चलन नहीं है। बनती भी नहीं हैं। शायद भारत की मिठाइयों में मेरे विद्यार्थी 'सोनपापड़ी' बहुत पसंद करते थे। दूसरा नंबर 'काजू की बर्फी' का होता था।

भारत में यद्यपि ब्रेड का चलन बढ़ा है लेकिन अब भी यह महानगरों और छोटे शहरों तक ही सीमित है और वह भी कि सभी शहरी परिवारों में भी ब्रेड खाने की परंपरा नहीं है। यानी कि अब भी बहुत–से लोग सुबह के समय नाश्ते में 'ब्रेड' खाना पसंद नहीं करते हैं। नाश्ते में रोटी सब्जी, पराठा, दलिया आदि ही खाते हैं। देहात में तो नाश्ता भी अन्य समय के भोजन की भांति ही होता है। कोरिया में भी यही स्थिति है। यहाँ तो ब्रेड का सेवन बहुत ही कम है। हालाँकि जगह–जगह विदेशी नामों से बेकरियाँ खुली हैं। 'पेरेस बगे' ब्रांड पूरे कोरिया में छाए हुए हैं। कोरिया में भारतीय परिवारों की तरह ही सुबह, दोपहर, और शाम का खाना लगभग एक जैसा है। लेकिन उसमें चावल ही सर्वोपरि है। चपाती का चलन नहीं है। अंतर केवल यह है कि सुबह के खाने, यानी नाश्ते में बहुत आइटम नहीं होते। दो या तीन तरह का खाद्य सामान ही होता है जबकि लंच और डिनर विविधता वाला होता है। बातचीत करने पर एक कोरियाई मित्र ने बताया कि 'बेकरी तो यहाँ बहुत हैं पर अन्य सामान बनाती हैं। ब्रेड हम कम पसंद करते हैं। यद्यपि मैंने बाजारों में देखा है कि 'पेरिस बगे' की दुकाने जगह–जगह बहुतायत में हैं। स्पष्ट है कि उनका बनाया सामान भी बिकता ही होगा। यूरोप में जबकि ब्रेड और उसी प्रकार की अन्य वस्तुएं तीनों बार भोजन में मौजूद रहती हैं। मैंने अनेक बार गेस्ट हाउस में ब्रेड के लिए कहा है लेकिन हर बार खाना सर्व करने वाली महिला का उत्तर नकारात्मक होता है। शाकाहारी होने के कारण अनेक बार ऐसी हालत बन जाती है कि खाना खाने लायक मेरे लिए कुछ नहीं होता। अनुरोध करने और तरह–तरह से समझाने के बावजूद रेस्तरां वाले कुछ भी नहीं खिला पाते। अधिक जोर देने पर चुप रह कर या केवल मुस्कुराकर सिर हिलाते रहते हैं। कोरियाई समाज में अतिथि का भी बहुत महत्व है। वे अपने मेहमान का बहुत ख्याल करते हैं। यह कुछ–कुछ भारतीय जैसा ही लगता है। वैसे भी कोरिया, जापान, चीन, थाईलैंड, सिंगापुर आदि अनेक देशों में बहुत–सी बातें और रीति–रिवाज एक समान हैं। लेकिन विकास की गति और स्थिति के हिसाब से इन देशों में पर्याप्त अंतर भी हैं।

प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
जामिइ

उदारीकरण के दौर की भारतीय समाज व्यवस्था और हिंदी कहानी

सोनम ख़ान

उदारीकरण में बाजार, अर्थ प्रणाली, विश्व बैंक, विश्व बाजार संगठन तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, यह सभी उन देशों पर अपना प्रभाव डालते है जो भूमंडलीकृत है। आज कहा जाता है कि विश्व एक गाँव बन गया है 'ग्लोबलाइजेशन' की दुनिया है। सभी वस्तुओं व सेवाओं का आदान–प्रदान हो रहा हैं। उदारीकरण की नीति अपनाकर विभिन्न देशों ने अपनी–अपनी सीमाओं के प्रतिबंधों में ढील कर दी है। उदारीकरण की प्रक्रिया से वित्त एवं बैंकिंग, व्यापार तथा राजकोषीय संबंधों में भी बदलाव आया है। इसका सीधा प्रभाव मनुष्य की आर्थिक स्थिति पर पड़ा है। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के कारण उसकी जीवन शैली में सुधार आता है जिससे समाज में जो भी परिवर्तन आता है। उदारीकरण के कारण सामाजिक स्तरीकरण का एक नया प्रारूप सामने आया है; जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि गतिविधियों में परिवर्तन हुए हैं। उदारीकरण के बाद देश व समाज में बड़ा जो परिवर्तन आया है, वह है 'रोजगार के अवसरों में वृद्धि' रोजगार के अवसर बढ़े हैं लेकिन यह वृद्धि गाँवों में नहीं बल्कि शहरों में अधिक हुई और इससे 'प्रवसन' की प्रक्रिया तेज हुई है लोग रोजगार की तलाश में गाँव से शहरों की तरफ पलायन करने लगे हैं। यह पलायन केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक भी है। समाज में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव हमारी संस्कृति पर भी पड़ता है, संस्कृति उदारीकरण के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। उदारीकरण की नीति का प्रभाव भारतीय समाज पर सकरात्मक व नकारात्मक दोनों ही प्रकार से पड़ा है।

उदारीकरण का भारतीय समाज व्यवस्था की बुनियादी इकाई 'परिवार' संस्था पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। भारतीय समाज में परिवार का विघटन बहुत तेजी से हुआ है। संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। नौकरी की तलाश में लोगों को एक शहर से दूसरे शहर में जाकर बसना पड़ता है और इस दौरान वे अपने परिवार व समाज से दूर होते जाते हैं। प्रसिद्ध लेखक अमित कुमार सिंह के अनुसार–''परिवार और समाज से धीरे धीरे दूर जाते जड़विहीन व्यक्ति की मानसिक बेचैनी का चिंताग्रस्त वैश्विक आलम यह है कि आज तनाव विश्व की तीसरी सबसे बड़ी बीमारी बनकर उभरी है।''[1] परिवार से दूर रहकर व्यक्ति सबसे अधिक तनाव व अवसाद से घिरा रहता है।

उदारीकरण के इस दौर में पति व पत्नी दोनों के कंधों पर परिवार व आय की जिम्मेदारी होती है जिसके चलते कभी–कभी तो पति अलग व पत्नी अलग शहर में रहने के लिए मजबूर होते हैं। उदारीकरण के वर्तमान दौर में विदेशी कंपनियों के आगमन से निजी क्षेत्रों में रोजगार बढ़ने के साथ–साथ भारतीय समाज व संस्कृति के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण/उदारीकरण के प्रभाव ने समाज में कई नई व्यवस्थाओं को जन्म दिया है जो परंपरागत समाज से काफी भिन्न हैं। ये व्यवस्थाएँ आर्थिक स्थितियों के साथ सामाजिक भी हैं। शहरीकरण, बाजारीकरण, मशीनीकरण, विस्थापन, समाज में नए वैकल्पिक रिश्तों का चुनाव ये सभी नई–नई व्यवस्थाएँ उदारीकरण/भूमंडलीकरण की ही देन हैं। उदारीकरण आने से सूचना प्रसार व विज्ञापन की दुनिया में परिवर्तन अधिक तेजी से हुए हैं। विज्ञापनों से सीधा जनता की मानसिकता पर प्रहार किया जाता है। आज व्यक्ति नागरिक की जगह उपभोक्ता बन गया है। एक ऐसा उपभोक्ता जो केवल वस्तुओं का विज्ञापन करता नजर आता है। संजय कुंदन की कहानी 'श्यामलाल का अकेलापन' इस बात का प्रमाण है कि आज व्यक्ति किसी–न–किसी प्रोडक्ट व ब्राण्ड में बदलता जा रहा है। कोई भी वस्तु खरीदने के बाद उसका विज्ञापन अन्य लोगों के सामने करना व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है। कहानी का पात्र श्यामलाल कहता है ''हर आदमी डरा रहा है। अब कोई कहता है कि उसने बीस हजार का चश्मा खरीद रखा हैं। कोई कहता है उसने पचास हजार का कुत्ता पाल रखा है।''[2] यहाँ हर कोई अपनी खरीदी वस्तुओं का प्रचार करने पर लगा हुआ है। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता उसकी हालत श्यामलाल जैसी हो जाती है जो अपने समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए तरह–तरह के प्रयत्न करता है। जो कभी एमपी से रिश्ता जोड़ने का प्रयत्न करता है तो कभी बेटी को ताइक्वांडो सिखाना चाहता है अर्थात् दिखावे की इस होड़ में खुद को किसी भी तरह शामिल करना चाहता है। आज समाज में हर कोई दोहरा जीवन जी रहा है। हमारा समाज दिखावटी बनता जा रहा है।

वर्तमान समय में निजी कंपनियों ने युवाओं को रोजगार तो दिया है साथ ही एक आशंका भरा जीवन भी दिया है। यह आशंका है नौकरी के छूट जाने की। मध्यम वर्गीय लोगों पर तलवार लटकती रहती है। मंदी के दौरान जब छटनी शुरू होती है तो सबसे पहले गाज मध्यम वर्ग के परिवारों पर गिरती है। मध्यम वर्गीय परिवार अपना स्टेटस उच्च वर्गीय परिवार की तरह करना चाहते है और इस चाह में उनके खर्च जरूरत से अधिक बढ़ने लगते हैं जिसका वे वहन नहीं कर पाते। ऐसे में नौकरी का छूट जाना व्यक्ति को गलत मार्ग की ओर ले जाता है। जयंती रंगनाथ की कहानी 'चल भाग चल, जिंदगी से...' में ''दो दिन में अभय ने काफी कुछ कमा लिया था। दो सोने की चेन, एक चांदी की, नकद दसेक हजार रूपए और तीन क्रेडिट कार्ड...''[3] यह सभी चीजें वह चुरा कर लाया था। घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए चोरी करने लगा क्योंकि अपनी पत्नी को पार्लर खरीद कर देना है। आवश्यकताएं मानवता पर इस प्रकार हावी होती जा रही हैं कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चोरी, हत्या जैसे जघन्य अपराध करने से भी नहीं डरता है। इस कहानी में वह अपनी आवश्यकताओं से इतना मजबूर है कि उसे एक बूढ़ी औरत की हत्या करनी पड़ती है। आज व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा, मकान ही नहीं बल्कि इससे कहीं ज्यादा है। जरूरतों का इस प्रकार

बढ़ना भी बाजारीकरण का प्रभाव है। व्यक्ति की स्वाभाविक आवश्यकताओं को धकेलते हुई उपभोक्तावाद के इस दौर में कुछ जरूरतें ऐसी भी बना दी गई हैं जो बिल्कुल 'गढ़ी हुई' हैं और यह बाजारवाद का परिणाम है।

औद्योगिकरण की चरम सीमा बाज़ारवाद है। भारत जैसे विकासशील देश जहाँ युवाओं की संख्या अधिक है रोजगार के सृजन की आवश्यकता ज्यादा है, लेकिन मशीनीकरण के कारण अपेक्षित रोजगार संभावनाओं में भी कमी आती जा रही है। एक तरफ जहाँ हमारा देश तकनीकी रूप में समृद्ध होता जा रहा है वहीं दूसरी तरफ यह युवा वर्ग बेरोजगारी की दलदल में फँसता जा रहा है। आज ऐसा समय आ गया है कि मानव मशीन से विस्थापित हो रहा है। उदाहरणस्वरूप– अभी हाल ही में उपभोक्ता की सुविधा एवं कार्य में शीघ्रता लाने के लिए यूनियन बैंक में 'लक्ष्मी' नामक रोबोट को लॉच किया है। आईसीआईसीआई बैंक में भी वैसे ही 'रोबोटिक इन्टेलीजेन्स' का प्रयोग किया जा रहा है। पैसों के ट्रांजिक्शन के लिए मशीनीकरण के प्रभाव से जहाँ एक ओर समय व धन की बचत हुई है वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। आज लोग मिस्त्री से मजदूर बनते जा रहे हैं। उमाशंकर चौधरी की कहानी 'और इब्नेबतूता गायब हो गया' में इब्नेबतूता ऐसा मिस्त्री है जो लोहे को अपने दिमाग की उपज से कोई भी आकार देने में सक्षम है। पूजा की घंटी, अस्थमा के लिए इनहेलर बनाना उसकी प्रतिभा का सबूत था जिसे देखकर सभी लोग चौंक जाते थे। परंतु इब्नेबतूता के ये अच्छे दिन अधिक दिनों तक नहीं चल सके। ''इब्नेबतूता का स्वर्णकाल उस दुकान में तब खत्म हो गया, जब उसके मालिक ने तेजी से समाज की बदली बयार में इस दुकान को भी डाल दिया और इस दुकान में कंप्यूटर लाकर रख दिया।''[4] इस तरह इब्नेबतूता को एक कंप्यूटर ने विस्थापित कर दिया। यह विस्थापन केवल इब्नेबतूता का नहीं था बल्कि उसके पूरे परिवार का विस्थापन था। उस परिवार में प्रेम, शांति, सौहार्द, एकता का विस्थापन था।

उदारीकरण की इस प्रवृत्ति ने 'व्यक्ति से व्यक्ति' के संबंधों को भी प्रभावित किया है। आज पारंपरिक रिश्तों को आधुनिक वैकल्पिक रिश्ते चुनौती दे रहे हैं। 'फ्री सेक्स' एवं 'लिव इन रिलेशनशिप' व 'सरोगेट मदर' जैसे कॉन्सेप्ट समाज के सामने रखे जा रहे हैं। ये आधुनिक कॉन्सेप्ट एक तरफ परंपरागत जड़ता से मुक्ति दिलाने का दंभ भरते हैं तो वहीं दूसरी तरफ एक अन्य प्रकार के शोषण को न्यौता भी देते हैं। विवाह संस्था जो आज–कल प्रश्न चिन्ह् के घेरे में आ रही है और इसके विकल्प में लिव–इन रिलेशनशिप को बढ़ावा दिया जा रहा है। लेकिन यह कॉन्सेप्ट भी कहीं न कहीं औरत के शोषण का जरिया बनता जा रहा है। नासिरा शर्मा की कहानी 'दूसरा चेहरा' में हमें आधुनिक समाज की झलक दिखती है। इस कहानी में लड़का लड़की दोनों पढ़े–लिखे और आधुनिक सोच वाले हैं। लड़की आत्मनिर्भर है, छुट्टियों में अपने प्रेमी से मिलने जयपुर से फैज़ाबाद जाती है। वह प्रेमी जो पहले से शादी शुदा है, लड़के को केवल नए–नए संबंधों को बनाना अच्छा लगता है। प्रेमी कहता है– ''जहाँ तक औरत–मर्द उसको ले जाना चाहते हैं। यह उनके हालात पर भी निर्भर है। हमारे हालात हैं। हम मिलते रहें। तुमने तन मन जो भी माँगा मैंने दिया और मुझे जो जरूरत थी वह तुमने मुझे दिया, तन–मन धन। इसमें किसी ने किसी के साथ दगा नहीं की फिर तुम क्यों उदास हो? मुझे लज्जित करना क्यों चाह रही हो सिर्फ इसलिए कि हमारा संबंध परम्परागत सांचे में फिट नहीं बैठता है?''[5] ऐसे संबंधों की कल्पना हमारे वर्तमान समाज में की जा सकती है। जहाँ लड़का–लड़की दोनों आत्मनिर्भर हों। वे अपनी इच्छाओं से संबंध बनाते हैं और जब वह संबंध टूटते हैं तो दोनों किसी को दोष नहीं देते। अपने रिश्ते की सच्चाई को आसानी से स्वीकार लेते हैं। लेकिन क्या समाज भी उन्हें मान्यता देता है। आज युवा वर्ग इन संबंधों को सहजता के साथ अपने जीवन में उतार रहे हैं। शरद सिंह की कहानी 'कस्बाई सिमोन' में रितिक और श्रुति दोनों अपनी मर्जी से लिव इन रिलेशनशिप में रहने का फैसला करते हैं। परंतु समाज इन रिश्तों को मान्यता नहीं देता है, छिपकर बनाए गए रिश्तों पर कोई उंगली नहीं उठाता क्योंकि उससे समाज की मर्यादा बनी रहती है। तभी तो कहानी में मकान मालिक कहता है ''आप दोनों अलग–अलग घरों में रहिए। एक–दूसरे को चचेरे–ममेरे या मुंहबोले भाई–बहन होना प्रकट कीजिए। फिर आपस में खूब मिलिए और खूब सब कुछ कीजिए, कोई उंगली नहीं उठाएगा।''[6] समाज के सामने मान्यता प्राप्त रिश्तों में रहिए तब तो समाज में किसी की आलोचना का निशाना नहीं बनेंगे। परंतु वहीं लिव इन रिलेशनशिप में रहने वाले लोग समाज की प्रताड़ना का शिकार होते हैं और यहीं से शुरू होता है एक द्वंद 'व्यक्ति एवं समाज का' इस द्वंद्व की शिकार स्त्रियाँ होती हैं। समाज के बदलाव में स्त्री एवं पुरुष दोनों की बराबर भागीदारी होनी चाहिए लेकिन भारतीय समाज के इस बदलाव में पुरुष स्त्रियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है। समाज में आम पुरुष परिवर्तन तो चाहता है लेकिन अपने हक में। यही कारण है कि वह आधुनिकता की आधी में स्वयं को तो स्त्री के साथ खड़ा करना चाहता है लेकिन स्वार्थ उसके पांव उखाड़ देते हैं। वह फिर परंपरा की गोद में जा गिरता है। वही परंपरा जहाँ औरत सीता होनी चाहिए लेकिन अंग्रेजी बोलती हुई सीता।

उदारीकरण/भूमंडलीकरण की नीति ने भारतीय समाज व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि अकेलापन, अजनबीपन, तनाव आदि हमारे जीवन का अंग बनते जा रहे हैं, व्यक्ति–वयक्ति से कटता जा रहा है। आज व्यक्ति बेहतर जीवन के लिए विदेशों में जाकर नौकरी या बिजनेस कर रहा है, परंतु अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्यों व जीवन मूल्यों को पीछे छोड़ता जा रहा है। 9 अगस्त, 2017 की एक खबर के अनुसार मुंबई के एक फ्लैट में आशा साहनी नामक एक महिला रहती थी। जिसका बेटा अमेरिका में रहता था। उस महिला के बेटे के आने पर फ्लैट में महिला की हड्डियाँ पाई गईं। सोसायटी में रह रहे अन्य लोगों को इसकी खबर तक नहीं थी कि वह औरत उपेक्षा, पारिवारिक टूटन एवं अकेलेपन की शिकार थी। समाज में समीपता नष्ट हो गई है। इन संबंधों के बीच दूरी होने का एक कारण आर्थिक विवशता है। उस महिला की यह विद्रूप मौत वर्तमान भारतीय समाज व्यवस्था के बीच दूरी है।

वर्तमान में समाज की विभिन्न समस्याएँ परिवारों का बदलता स्वरूप, अकेलेपन का बोझ, देखावटीपन आदि समस्याएँ कहानीकार अपनी कहानियों में उठाते हैं। समाज में हो रहे परिवर्तनों का यथार्थ रूप कहानियों में देखने को मिलता है। अंततः उदारीकरण के इस दौर में मशीनीकरण, विज्ञापन व प्रतिस्पर्धा ने मनुष्यों की मानसिकता पर प्रहार किया है और उसे अकेलेपन, संत्रास, अजनबीपन, आपसी द्वेष आदि का शिकार बनाया है। कहानीकारों ने समाज की भयानक व कष्टदायक स्थितियों को देखकर कहानी के पात्रों के माध्यम से उसे

पाठक के सामने प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

1. सिंह अमित कुमार, भूमंडलीकरण और भारत; परिदृश्य और विकल्प, पृ.सं. 33, संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 110002
2. संपादक, सुशील सिद्वार्थ, हिंदी कहानी का युवा परिदृश्य, 1, कहानी श्यामलाल का अकेलापन, संजय कुंदन, पृ. सं. 155, संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 110002
3. संपादक, सुशील सिद्वार्थ, हिंदी कहानी का युवा परिदृश्य, 2, कहानी, चल भाग चल जिंदगी से...,जयंती रंगनाथ, पृ. सं. 81, संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 110002
4. संपादक, सुशील सिद्वार्थ, हिंदी कहानी का युवा परिदृश्य, 1, कहानी, और इब्नेबतूता मर गया, उमा शंकर चौधरी, पृ. सं. 236, संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 110002
5. नासिरा शर्मा, कहानी संग्रह, बुतखाना, कहानी, दूसरा चेहरा पृ. सं. 96, संस्करण 2002, लोकभारती प्रकाशन
6. संपादक, सुशील सिद्वार्थ, हिंदी कहानी का युवा परिदृश्य, 2, कहानी, कस्बाई सिमोन, शरद सिंह, पृ सं 236, संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 110002

पी.एच–डी. शोधार्थी (हिंदी विभाग)
जामिया मिल्लिया इस्लमिया

राशिद कमाल

बहना मेरी

बहना मेरी बहना मेरी
बहुत बेचैन रहता हूँ
ना जाने क्यों आजकल
बहन की याद आती है
ना जाने क्यों आजकल...
कारण भी बड़ा है
वो अकेली है धरा पर

न सुने हाल कोई उसका
न पूछे दिल की बात उसकी
वो भी कहती है
न सुने कोई हाल मेरा
न पूछे हाल कोई मेरा
मै अब अबला नहीं की डर जाऊँ
मैदान से पीछे हट जाऊँ

मैं हिम्मत करके आगे बढ़ूँगी
भाई तेरा नाम ऊँचा करूँगी
मै सुन कर उसकी बात
बस कहता हूँ यही
बहना तू आगे बढ़ती रहे
अपने कुल का नाम
ऊँचा करती रहे।

छात्र, एम.ए. हिंदी
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

मज़ाज एम. सिद्दीक़ी

एक मौन चीख़

मैं विचारों की धाराओं को तोड़ना चाहता हूँ,
अपने मन के रास्ते से, और लोगों की बातों से।
दुनिया मुझे सनकी और अड़ियल भले ही समझे,
मगर मेरी इच्छा है, मैं अजीब–गरीब ही सही, भले ही अलग–थलग।
पर असफलता का डर मुझे मुट्ठी में जकड़ लेता है,
यदि सवाल मेरी हिम्मत का है, मैं सच में–यह कर सकता हूँ।

मैं आजादी के पंख लगाकर उड़ना चाहता हूँ
ऊंचाइयों को पाने के लिए, अनंत सीमाओं को पार करना चाहता हूँ।
मैं अपने जुनून में तीव्रता उत्पन्न करना चाहता हूँ,
इस प्रलय के संगम से टूटकर और बाहर निकलना चाहता हूँ।
पर असफलता का डर मुझे मुट्ठी में जकड़ लेता है,
यदि सवाल मेरी हिम्मत का है, मैं सच में–यह कर सकता हूँ।

मैं खुद को एकमात्र और निराले व्यक्ति के रूप में चिह्नित करना चाहता हूँ,
उन विचारों और अहंकार की सोच को कुचलना चाहता हूँ।
मैं एक कुम्हार की मिट्टी की तरह नहीं ढल सकता,
मैं ऐसे विचारों को तोड़ना और उन से बाहर निकलना चाहता हूँ।
पर असफलता का डर मुझे मुट्ठी में जकड़ लेता है,
यदि सवाल मेरी हिम्मत का है, मैं सच में–यह कर सकता हूँ।

प्रोडक्शन मैनेजर
एजेके–एमसीआरसी
जामिइ

संस्कृत का वैश्विक परिदृश्य

प्रो. गिरीश चन्द्र पन्त

जामिया मिल्लिया इस्लामिया में संस्कृत विभाग की स्थापना 2017 में हुई। समय–समय पर जिज्ञासु छात्रों की ओर से पूछा जाता है कि वर्तमान में संस्कृत भाषा और इस भाषा में लिखे गए ग्रन्थों के पठन–पाठन की क्या उपयोगिता है और कहाँ–कहाँ इसकी व्यवस्था है? इसी को ध्यान में रखते हुए कुछ बिन्दुओं को "जामिया दर्पण" के माध्यम से सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

भाषा को किसी क्षेत्रीय सीमा या मत सम्प्रदाय के अन्दर नहीं बाँधा जा सकता। संस्कृत भाषा केवल भारतीयों की भाषा नहीं है, अपितु यह भाषा अपने ज्ञान और समृद्ध साहित्य के कारण सम्पूर्ण विश्व में अपना प्रभुत्व रखती है। इस भाषा को समृद्ध बनाए रखने के लिए और इस भाषा में सुरक्षित ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए नूतन साहित्य को प्रोत्साहित करना बहुत आवश्यक है। जिस प्रकार राज्याश्रय में रहकर प्राचीन काल में विद्वान साहित्य, व्याकरण, दर्शन और विज्ञान आदि के क्षेत्र में रचना करते थे, ठीक उसी प्रकार वर्तमान काल में भी विद्वान लोग नूतन रचना करने में कृत संकल्प हैं। सरकारों द्वारा प्रदत्त पुरस्कार एवं सहयोग राशि भी उन्हें रचनाकर्म हेतु उत्साहित करती है।

भारत की संस्कृति की नींव संस्कृत भाषा पर आधारित है। संस्कृत भाषा के बारे में एक गलत धारणा है कि यह केवल मंदिरों या धार्मिक समारोहों में मंत्र जपने के लिए एक भाषा है। हालाँकि, यह संस्कृत साहित्य के 5% से कम है। 95% से अधिक संस्कृत साहित्य का धर्म से कोई लेना–देना नहीं है वस्तुतः यह भाषा दर्शन, कानून, विज्ञान, साहित्य, व्याकरण, ध्वन्यात्मकता, व्याख्या आदि से संबंधित है। विशेष रूप से, संस्कृत प्राचीन भारत में हमारे वैज्ञानिकों की भाषा थी। इस बात पर संदेह नहीं है कि हम विज्ञान में पश्चिमी देशों से पीछे हैं, लेकिन एक समय था जब भारत विज्ञान में पूरी दुनिया का नेतृत्व कर रहा था। हमारे पूर्वजों और हमारी वैज्ञानिक विरासत की महान् वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्ञान भारत को आधुनिक दुनिया में विज्ञान के क्षेत्र में एक बार फिर से प्रोत्साहन और नैतिक शक्ति प्रदान कर रहा है।

संस्कृत भाषा का शब्दकोश लगभग आठ लाख शब्दों से ज्यादा है, जो शायद ही किसी और भाषा का हो। संस्कृत भाषा में लिखे गए आयुर्वेद के ग्रन्थों पर किए जा रहे शोधों के द्वारा चिकित्सक कैंसर एवं एड्स जैसे रोगों का इलाज आज कर रहे हैं। संस्कृत भाषा अपने विशाल–साहित्य भण्डार, लोक हित की भावना, विभिन्न प्रयासों तथा उपक्रमों के द्वारा नवीन–नवीन शब्दों के निर्माण की क्षमता आदि के द्वारा सतत प्रवाहमान है। भारत में इस भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, व्यापक और संपन्न स्वरूप विद्यमान है।

आज भी यह भाषा, अत्यंत सीमित क्षेत्र में ही सही, लेकिन लोगों द्वारा बोली जाती है। इसमें व्याख्यान होते हैं और भारत के विभिन्न प्रादेशिक भाषाभाषी पंडितजन इसका परस्पर वार्तालाप में प्रयोग करते हैं। प्रत्येक तीन वर्ष में होने वाले **विश्व संस्कृत सम्मलेन** में केवल संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं में ही शोधपत्र प्रस्तुत किए जाते हैं इसी कारण ग्रीक और लैटिन आदि प्राचीन मृत भाषाओं (डेड लैंग्वेजेज) से संस्कृत की स्थिति भिन्न है। यह मृतभाषा नहीं, अमर भाषा है।

ऋक्संहिता की भाषा को संस्कृत का आद्यतम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। यह भी माना जाता है कि ऋक्संहिता के प्रथम और दशम मंडलों की भाषा प्राचीनतम है। कुछ विद्वान् प्राचीन वैदिक भाषा को परवर्ती पाणिनीय (लौकिक) संस्कृत से भिन्न मानते हैं। पर यह पक्ष भ्रमपूर्ण है। वैदिक भाषा अभ्रांत रूप से संस्कृत भाषा का आदिम उपलब्ध रूप है। पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा है उसके दो अंश हैं आचार्य पतंजलि के ''व्याकरण महाभाष्य'' नामक प्रसिद्ध शब्दानुशासन के आरंभ में भी वैदिक भाषा और लौकिक भाषा के शब्दों का उल्लेख हुआ है। ''संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः'' वाक्य में जिसे देवभाषा या 'संस्कृत' कहा गया है वह संभवतः यास्क, पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के समय तक ''छंदोभाषा'' (वैदिक भाषा) एवं ''लोकभाषा'' के दो नामों, स्तरों व रूपों में व्यक्त थी।

प्रामाणिकता के विचार से इस भाषा का सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी है। कम से कम 600 ई. पू. का यह ग्रंथ आज भी समस्त विश्व में अतुलनीय व्याकरण के रूप में समादृत है। विश्व के और मुख्यतः अमरीका के भाषाशास्त्री संघटनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से अष्टाध्यायी को आज भी विश्व का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते हैं। पाणिनि से लेकर पतंजलि तक सभी ने संस्कृत को लोक की भाषा कहा है, लौकिक भाषा बताया है। अन्य सैकड़ों प्रमाण सिद्ध करते हैं कि ''संस्कृत'' वैदिक और वैदिकोत्तर पूर्व पाणिनि काल में लोकभाषा और व्यवहार भाषा (स्पीकेन लैंग्वेज) थी। यह अवश्य रहा होगा कि देश, काल और समाज के सन्दर्भ में उसकी अपनी सीमा रही होगी। बाद में चलकर वह पाठक समाज की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा बन गई। तदनंतर यह समस्त भारत में सभी पंडितों की, चाहे वे आर्य रहें हों या आर्येतर जाति के–सभी की, सर्वमान्य सांस्कृतिक भाषा हो गई और पूरे भारतवर्ष में इसका प्रसार, समादर और प्रचार रहा एवं आज भी बना हुआ है। लगभग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से यूरोप और पश्चिमी देशों के मिशनरी एवं अन्य विद्याप्रेमियों को संस्कृत का परिचय प्राप्त हुआ। धीरे–धीरे पश्चिम में ही नहीं, समस्त विश्व में संस्कृत का प्रचार हुआ। जर्मन, अंग्रेज, फ्रांसीसी, अमरीकी तथा यूरोप के अनेक छोटे–बड़े देशों के निवासी विद्वानों ने विशेष रूप से संस्कृत के अध्ययन–अनुशीलन को आधुनिक विद्वानों में प्रजाप्रिय बनाया।

आधुनिक विद्वानों और अनुशीलकों के मत से विश्व की पुरातन भाषाओं में संस्कृत सर्वाधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और संपन्न भाषा है। वह आज केवल भारतीय भाषा ही नहीं, अपितु विश्वविख्यात भाषा भी है।

संस्कृत भाषा ही सर्वश्रेष्ठ क्यों और इसकी वैज्ञानिकता क्या है?

देवभाषा संस्कृत की गूंज कुछ साल बाद अंतरिक्ष में सुनाई दे सकती है। इसके वैज्ञानिक पहलू का मुरीद हुआ अमेरिका इसे नासा की भाषा बनाने की कसरत में जुटा है। नासा के वैज्ञानिक 'रिक ब्रिग्स' ने बताया कि संस्कृत ऐसी प्राकृतिक भाषा है, जिसमें सूत्र के रूप में कंप्यूटर के जरिए कोई भी संदेश कम से कम शब्दों में भेजा जा सकता है। इसके कई अन्य वैज्ञानिक पहलुओं को समझते हुए अमेरिका ने वहाँ नर्सरी क्लास से ही बच्चों को संस्कृत की शिक्षा शुरू कर दी है। नासा के 'मिशन संस्कृत' की पुष्टि उसकी वेबसाइट भी करती है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि 20 साल से नासा संस्कृत पर काफी पैसा और मेहनत कर चुकी है। साथ ही इसके कंप्यूटर प्रयोग के लिए सर्वश्रेष्ठ भाषा का भी उल्लेख है। संस्कृत भाषा वर्तमान में ''उन्नत किर्लियन फोटोग्राफी'' तकनीक में इस्तेमाल की जा रही है। वर्तमान में, उन्नत किर्लियन फोटोग्राफी तकनीक सिर्फ रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका में ही मौजूद हैं। अमेरिका, रूस, स्वीडन, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और ऑस्ट्रिया वर्तमान में भरतनाट्यम् और नटराज के महत्व के बारे में शोध कर रहे हैं। नटराज शिव जी का कॉस्मिक नृत्य है। जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र कार्यालय के सामने शिव या नटराज की एक मूर्ति है। ब्रिटेन वर्तमान में हमारे श्रीचक्र पर आधारित एक रक्षा प्रणाली पर शोध कर रहा है। (स्रोत : अमेरिकन संस्कृत इंस्टीट्यूट http://www.americansans krit.com/)

संस्कृत शिक्षा का वर्तमान स्वरूप

भारत के अलग–अलग राज्यों में भिन्न–भिन्न स्तरों पर संस्कृत कक्षा 1 से 12वीं तक पढ़ाई जा रही है। यदि केरल में संस्कृत को प्रथम कक्षा से पढ़ाया जा रहा है तो विद्याभारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान से सम्बद्ध 14,000 विद्यालयों में इसे दूसरी कक्षा से पढ़ाया जा रहा है। उत्तराखंड में इसे तीसरे दर्जे से पढाया जाता है। अधिकांश राज्यों के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड संस्कृत को त्रिभाषा फार्मूले के अंतर्गत छठी से दसवीं कक्षा तक पढ़ाते हैं जबकि 11वीं तथा 12वीं में इसे द्वितीय वैकल्पिक भाषा के रूप में पढाया जाता है। कुछ राज्य इसे अपनी मातृभाषा के साथ एक सम्मिश्रित पाठ्यक्रम के रूप में भी पढ़ाते हैं। ऐसा अनुमान है की कुल मिलाकर लगभग पांच करोड़ बच्चे विद्यालयी स्तर पर संस्कृत पढ़ते हैं। आज देशभर में विद्यालयी स्तर पर लगभग 5000 पारंपरिक संस्कृत पाठशालाएँ और 1000 वेद पाठशालाएँ हैं। केवल आठ राज्यों में ही संस्कृत माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अर्थात् संस्कृत शिक्षा निदेशालय हैं जबकि शेष राज्यों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। वेद पाठशालाओं के लिए कोई बोर्ड नहीं है फिर भी इनके अधीन लगभग तीन लाख बच्चे संस्कृत का अध्ययन करते हैं।

उच्च शिक्षा में संस्कृत

जहाँ तक उच्च शिक्षा की बात है, लगभग 120 सामान्य विश्वविद्यालय स्नातक और परा–स्नातक/स्नातकोत्तर स्तर परसंस्कृत पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। देश में 17 संस्कृत विश्वविद्यालय हैं और इन संस्कृत विश्वविद्यालयों से लगभग 1000 पारंपरिक महाविद्यालय सम्बद्ध हैं, परन्तु इनमें से कई संस्कृत विश्वविद्यालयों के पास महाविद्यालयों को सम्बद्ध करने की शक्ति प्राप्त नहीं है, और कई राज्यों में पारंपरिक संस्कृत महाविद्यालयों को सम्बद्ध करने हेतु किसी सुस्पष्ट नीति का भी अभाव है। कुल मिलाकर लगभग 10 लाख छात्र इस व्यवस्था (अव्यवस्था) में संस्कृत अध्ययन कर रहे हैं ।

आज देश में 10 संस्कृत अकादमियाँ, 16 प्राच्य शोध संस्थान तथा संस्कृत में 60 के लगभग पत्र–पत्रिकाएँ और प्रकाशनों के अलावा लगभग 100 गैर सरकारी संस्थाएँ संस्कृत के प्रोत्साहन में जुटी हुई हैं। यद्यपि अधिकांश राज्य 11वीं तथा 12वीं के स्तर पर कला वर्ग के छात्रों के लिए ही संस्कृत प्रदान करते हैं। हालाँकि अधिकांश राज्यों ने 10वीं कक्षा तक त्रि–भाषा फार्मूला, 11वीं तथा 12वीं कक्षा तक द्वि–भाषा फार्मूला कार्यान्वित कर दिया है परन्तु अभी भी सीबीएससी, आईसीएससी तथा एनआईओएस आदि में त्रिभाषा फार्मूला केवल आठवीं कक्षा तक है जबकि 9वीं तथा 10वीं कक्षा के लिए द्वि–भाषा और 11वीं तथा 12वीं के लिए एक–भाषा फार्मूला अपना रखा है। यही कारण है कि छात्र अंग्रेजी को ही एक भाषा के रूप में पहले अपनाता है और उच्च शिक्षा में चाहते हुए भी संस्कृत को मुख्य विषय के रूप में नहीं ले पाता । महात्मा गाँधी ने अपने पुत्रों को लिखे अनेक पत्रों में संस्कृत शिक्षण के महत्त्व पर बल दिया था। उनका विचार था कि संस्कृत के बिना किसी भी भारतीय की शिक्षा वास्तव में अधूरी है। अनेक सम्मानित लोगों और अपने शिष्यों को लिखे अपनी पत्रों में स्वामी विवेकानंद ने भी संस्कृत और इसके महत्त्व पर विशेषरूप से बल दिया था। गाँधी जी और स्वामी विवेकानंद की इस परिकल्पना को फलीभूत करने के लिए हरसंभव प्रयत्न किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जामिया मिल्लिया इस्लामिया के संस्कृत विभाग द्वारा जहाँ एक ओर स्नातक, स्नातकोत्तर, एम.फिल, पी–एच.डी. के मुख्य पाठ्यक्रम प्रस्तुत किए हैं, वहीं स्नातक एवं स्नातकोत्तर के सभी सेमेस्टर के लिए सी.बी.सी.एस. के पाठ्यक्रम बनाए हैं, जिन्हें अन्य विभागों के छात्र अपनी पसन्द से चुन सकते हैं और संस्कृत से जुड़ सकते हैं। विश्वविद्यालयों में संस्कृत को लेकर कई आधुनिक विषयों पर शोध किए जा रहे हैं। भौतिक विज्ञान का क्वांटम सिद्धांत हो या, राजनीति विज्ञान की दंडनीति, प्राचीन इतिहास में लिपियों को पढ़ने की आवश्यकता हो या साहित्य का गहन अध्ययन, सब में संस्कृत आवश्यक है। जामिया मिल्लिया इस्लामिया का संस्कृत विभाग जहाँ एक ओर अपने स्नातक पाठ्यक्रम में संस्कृत नीतिशास्त्र, व्यावहारिक संस्कृत, वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य, पाणिनीय व्याकरण, गीता में प्रबन्धन के सिद्धान्त, संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास, भारतीय दर्शन, संस्कृत रंगमंच, संस्कृत पत्रकारिता, भाषाविज्ञान, भारतीय सामाजिक संस्थाओं और राजशास्त्र का अध्ययन, भारतीय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं समालोचना, संगणकीय संस्कृत, मुगलकाल का संस्कृत साहित्य, आदि विषयों की शिक्षा दे रहा है वहीं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति, वैदिक वाङ्मय ,भारतीय दर्शन, व्याकरण एवं व्याकरण दर्शन, संस्कृत काव्यशास्त्र

तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विशेषज्ञतापरक पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं। वर्त्तमान में 12 छात्र/छात्राएँ पी–एच.डी. उपाधि हेतु शोधकार्य कर रहे हैं। जिन विद्यार्थियों ने विद्यालय स्तर पर संस्कृत नहीं पढ़ी है या आठवीं कक्षा तक पढ़ी है ऐसे विद्यार्थी 12वीं कक्षा के बाद संस्कृत का एक वर्षीय प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम कर सकते हैं। वे इस पाठ्यक्रम को उत्तीर्ण कर बी.ए. आनर्स संस्कृत करने के लिए योग्य माने जाएँगे। सी.बी.सी.एस.स्नातक पाठ्यक्रमों में (1) भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक मूल्य, (2) भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख शास्त्र, (3) भारतीय दर्शन के मूल सिद्धान्त, (4) आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त, (5) भारतीय ज्योतिष शास्त्र के मूल सिद्धान्त, (6) भारतीय वास्तुशास्त्र विषय पढ़ाए जा रहे हैं। इस संबंध में विस्तृत जानकारी जामिया वेबसाइट पर उपलब्ध प्रास्पेक्टस से ली जा सकती है या संस्कृत विभाग कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।

संस्कृत की शिक्षा आप इन प्रमुख संस्थानों से भी प्राप्त कर सकते हैं–

क्रम संख्या	स्थापना वर्ष	नाम	स्थान
1	1791	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	वाराणसी
2	1961	कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय	दरभंगा
3	1962	राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ	तिरुपतितिरुपति
4	1962	श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ	नई दिल्ली
5	1970	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	नई दिल्ली
6	1981	श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय	पुरी
7	1993	श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय	कालडी
8	1997	कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय	रामटेक
9	2001	जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय	जयपुर
10	2005	श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय	वेरावल
11	2005	उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय	हरिद्वार
12	2006	श्री वेंकटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय	तिरुपति
13	2008	महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय	उज्जैन
14	2011	कर्नाटक संस्कृत विश्वविद्यालय	बंगलुरु
15	2011	कुमार भास्कर वर्मा संस्कृत एवं पुरातन अध्ययन विश्वविद्यालय	नलबाड़ी
16		असम संस्कृत विश्वविद्यालय	
17	2018	श्री वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय	कैथल (हरियाणा)

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की आदर्श पाठशाला योजना के तहत सम्प्रति देश भर में 23 आदर्श महाविद्यालय हैः–

1. स्वामी परांकुशाचार्य आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, हुलासगंज, जिला–गया (बिहार)
2. लक्ष्मीदेवी शराफ आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, कालीरेखा, जिला–देवधर–814112 (बिहार)
3. जगदीश नारायण ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत महाविद्यालय, लगमा रोड़, जिला–दरभंगा (बिहार)
4. राजकुमारी गणेश शर्मा आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, कोलहन्टा पटोरी, जिला–दरभंगा–846003 (बिहार)
5. श्री रंगलक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)
6. भगवान दास संस्कृत महाविद्यालय, पोस्ट–गुरुकुल कांगडी, जिला–हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)
7. श्री एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, जिला–मैनपुरी–205001 (उत्तर प्रदेश)
8. हिमाचल आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, जांगला रोहरूद्ध, जिला–शिमला, (हिमाचल प्रदेश)
9. सनातन धर्म आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, डोगी, जिला–उना–174307 (हिमाचल प्रदेश)
10. हरियाणा संस्कृत विद्यापीठ, पोस्ट–बघोला (पलवल) जिला–फरीदाबाद–121102 (हरियाणा)
11. श्री दीवान कृष्ण किशोर सनातन धर्म आदर्श संस्कृत महाविद्यालय (लाहौर), अम्बाला केन्ट–133001 (हरियाणा)
12. मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय, द्वारा–भारतीय विद्या भवन, के.एम. मुंशी मार्ग, मुम्बई–400007 (महाराष्ट्र)
13. वैदिक संशोधन मण्डल, तिलक विद्यापीठ नगर, पुणे–37 (महाराष्ट्र)
14. पूर्णप्रज्ञा संशोधन काथीगुप्पा मेन रोड, बैंगलूर– 560 029 (कर्नाटक)
15. कालीकट आदर्श संस्कृत महाविद्यालय बालुसेरी, पोस्ट–बालुसेरी, जिला– कालीकट 673 612 (केरल)
16. मद्रास संस्कृत कालेज एवं एस. एस. वी पाठशाला, 84 रायपेठा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास – 600 004 (तमिलनाडु)
17. श्री सीता राम वैदिक आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, 7/2 पी. डब्लू. डी. रोड, कलकता–700 035 (पश्चिम बंगाल)
18. राम जी मेहता आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, मालीघाट, मुजफ्फरपुर, (बिहार)
19. कालिया चौक विकराम किशोर आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, गांव कालिया चौक, पी. ओ. हरिया, डिस्ट्रिक्ट मिदना पुर, पश्चिम बंगाल– 721 430
20. रानी पद्मावती तारा योगतंत्र आदर्श महाविद्यालय, इन्द्रापुर (शिवपुर) वाराणसी, उत्तर प्रदेश
21. श्री अहोबिल मठ संस्कृत महाविद्यालय, मुद्रन्तकम, तमिलनाडु
22. संस्कृत अकादमी, ओसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
23. चिन्मय फाउन्डेशन, (शोध संस्थान) आदि शंकरा निलयम, पोस्ट्–वेलीयानन्द, डिस्टी–एरनाकुलम, केरल– 682 319

इन भारतीय विश्वविद्यालयों के अलावा अगर आप विदेशों में भी संस्कृत पढ़ना चाहते हैं, तो ये विश्वविद्यालय भी संस्कृत के अलग–अलग पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, मेलबर्न विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया, यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग, यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड, यू.के.,नारोपा यूनिवर्सिटी, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका, शिल्पाकर्ण विश्वविद्यालय, थाईलैंड, हायडलबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल आदि। इन सबकी विस्तृत जानकारी इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

राजभाषा कार्यान्वयनः समस्याएँ और समाधान

डॉ. राजेश कुमार 'माँझी'

यह सर्वविदित है कि हमारे देश में भाषा की एक बहुत ही सुदीर्घ परंपरा रही है। प्राचीन काल में लंबे समय तक संस्कृत लगभग संपूर्ण भारत में व्यवहत होती थी। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि 11वीं–12वीं शताब्दी से हिंदी भारत के एक विस्तृत भू–भाग में बोली एवं समझी जाने लगी। बावजूद इसके मुगलकाल में राजभाषा के रूप में फारसी का प्रयोग हुआ। ब्रिटिश काल में अंग्रेज़ी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया, परंतु आम जनता के साथ संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का ही इस्तेमाल किया गया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनसंपर्क की भाषा के रूप में हिंदी ने बहुत ही अहम भूमिका अदा की। आज़ादी के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा "प्रांतीय भाषा या भाषाओं के बदले में नहीं बल्कि उनके अलावा एक प्रांत को दूसरे प्रांत का संबंध जोड़ने के लिए सर्वमान्य भाषा की आवश्यकता है। ऐसी भाषा तो एकमात्र हिंदी या हिंदुस्तानी ही हो सकती है।"

अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद राजभाषा के संबंध में संविधान सभा के सदस्यों ने बहुत चिंतन–मनन किया। देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को 14 सितंबर 1949 को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया गया। राजभाषा के संबंध में यह कहा जा सकता है कि शासन में कानून बनाने, आदेश निकालने, अध्यादेश जारी करने, सूचना प्रसारित करने और लेखा–जोखा तैयार करने हेतु जिस भाषा का इस्तेमाल किया जाता है उसी को राजभाषा कहा जाता है। हम सभी जानते हैं कि सरकारी काम–काज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के क्षेत्र में प्रगति हुई है परंतु लक्ष्य अभी भी प्राप्त नहीं हुए हैं। सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि हुई है परंतु बहुत–सा काम अभी भी मात्र अंग्रेज़ी में हो रहा है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अंतर्गत आने वाले लक्ष्य है कि सरकारी काम–काज में मूल टिप्पण और प्रारूपण के लिए हिंदी का इस्तेमाल हो जो कि संविधान की मूल भावना के अनुरूप है। परंतु दुःख की बात यह है कि आज़ादी के सात दशक बाद भी हम राजभाषा हिंदी को वह पहचान नहीं दे पाए हैं जो विश्व के विभिन्न देशों ने अपनी–अपनी भाषाओं को दिया है।

इस संबंध में जहाँ तक मुझे लगता है राजभाषा हिंदी को सही पहचान न देने पाने का मुख्य कारण इच्छा–शक्ति की कमी और अनुवाद पर निर्भरता है। मेरा यह मानना है कि केवल अनुवाद के सहारे राजभाषा हिंदी का प्रचार–प्रसार एवं कार्यान्वयन संभव नहीं है। राजभाषा का कार्यान्वयन तभी संभव है जब हम कार्यालयी कार्य मूल रूप से हिंदी में करें। इसके साथ–साथ जब तक हिंदी हमारे हृदय के नज़दीक नहीं पहुँचेगी तब तक कार्यालयी कार्य भी हिंदी में करना संभव नहीं होगा। अतः इस बात की भी आवश्यकता है कि हम हिंदी पढ़ने–लिखने और बोलने पर गर्व का अनुभव करें। हिंदी बहुत ही सरल एवं सुबोध भाषा है। हिंदी की व्यापकता एवं सामर्थ्य के आगे अंग्रेज़ी कुछ भी नहीं है। अंग्रेज़ी जानना–बोलना कोई बुरी बात नहीं है पर हिंदुस्तानी होने के नाते हिंदी को हीन न समझें।

यह भी ज्ञातव्य है कि भारत सरकार के कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग के लिए किए गए प्रावधानों के बावजूद विरोध भले ही प्रत्यक्ष तौर पर न दिखाई पड़े परंतु प्रगति की वास्तविकता हम लोगों से छुपी हुई नहीं है। संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकार की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन की नीति के बावजूद कुछ सरकारी कर्मचारी अभी भी हिंदी से कतराते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि जब तब हम अपनी मानसिकता में परिवर्तन नहीं लाएँगे और सरकारी काम–काज हिंदी में करना शुरू नहीं करेंगे तब तक राजभाषा की स्थिति में कोई परिवर्तन लाना संभव नहीं है। जब तक हिंदी भाषा का पाठ अनुवाद के रूप में हमारे सामने आएगा तब तक वह सहज, सरल व सुबोध नहीं हो सकता।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी शब्द कठिन नहीं होता। प्रयोग में लाने के बाद वह अपना–सा लगने लगता है। हिंदी भाषा को कठिन महसूस करने की समस्या किसी हद तक मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक अधिक है। सच्चाई यह है कि जहाँ हिंदी ध्वन्यात्मक भाषा है वहीं अंग्रेज़ी के उच्चारण के लिए शब्दकोश देखने की जरूरत पड़ जाती है। हिंदी के संदर्भ में केवल अर्थ देखने के लिए शब्दकोश की जरूरत पड़ती है।

यह भी सच है कि अंग्रेज़ी में काम करके अपने को श्रेष्ठ समझने की मानसिक दासता के चलते हिंदी में काम करना संभव नहीं हो पाया है। इसी के कारण लोगों में हिंदी के प्रति उत्साह भी नहीं पैदा हो पाया है। यह कठिनाई केवल हिंदीतर भाषियों की ही नहीं है, हिंदी भाषियों की भी है। राज्य स्तर पर जो लोग हिंदी में काम करते हैं,

केन्द्र स्तर पर तैनात होने पर अंग्रेज़ी अपना लेते हैं। हिंदी के प्रयोग में अटपटापन, दुरुहता, जटिलता आदि बहुत कुछ इसी अनिच्छा का परिणाम है। इसी का यह परिणाम है कि बहुत से कर्मचारी हिंदी के प्रति अपनापन महसूस नहीं करते और सहज, सुबोध भाषा का प्रयोग तो दूर सही भाषा लिखने पर भी ध्यान नहीं देते। उच्च अधिकारियों का इस प्रकार का रवैया निचले स्तर के अधिकारियों और कर्मचारियों को भी प्रभावित करता है। उन्हें लगता है कि यदि वे हिंदी का प्रयोग करेंगे तो यह समझा जाएगा कि उन्हें अंग्रेज़ी नहीं आती। इस मानसिकता में परिवर्तन लाना नितांत आवश्यक है। राजभाषा हिंदी के प्रयोग संबंधी कठिनाइयों का समाधान छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देकर हो सकता है।

सबसे पहली बात यह है कि अनुवाद करते समय किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए अतिरिक्त वाक्य जोड़ने से संकोच नहीं करना चाहिए। कई बार अंग्रेज़ी के एक शब्द को स्पष्ट करने के लिए एक पूरा वाक्य हिंदी में लिखना पड़ सकता है। इसे भाषिक संप्रेषण क्षमता की कमी बिल्कुल नहीं समझना चाहिए।

दूसरी तरफ यह भी हो सकता है कि अंग्रेज़ी भाषा के एक पूरे वाक्य के लिए हिंदी भाषा का एक शब्द ही पर्याप्त हो सकता है। भाषा का स्वरूप निर्धारित करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि पत्र का प्रारूप किस व्यक्ति को संबोधित किया जा रहा है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस आदमी की सामाजिक एवं पदीय स्थिति कैसी है और उसकी भाषिक योग्यता कैसी है। ऐसी जानकारी के आधार पर ही व्यक्ति के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो कार्यालयी अर्थात् प्रशासनिक कार्यों के निष्पादन हेतु सरल भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए। हिंदी को उसका उचित स्थान प्रदान करने हेतु हमें अंग्रेज़ी का मोह त्यागकर मूल रूप से हिंदी में कार्य करना होगा तथा उसके महत्व एवं उपयोगिता को बढ़ाना होगा। इसके लिए हम सबको मिलजुल कर हिंदी के प्रचार–प्रसार में सक्रिय एवं सृजनात्मक सहयोग करना होगा।

जहाँ तक राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की समस्या का प्रश्न है उस संबंध में मेरा यह मानना है कि आज भी केन्द्र सरकार के कई कार्यालयों में हिंदी पदों को नहीं भरा गया है। इसके स्थान पर राजभाषा का कार्य दूसरे अधिकारियों/कर्मचारियों को सौंप दिया गया है जिसके चलते उसके कार्यान्वयन को बल नहीं मिला है।

कार्यान्वयन संबंधी समस्या का संबंध राजभाषा संसदीय समिति से भी जुड़ा हुआ है। केन्द्र सरकार के किसी भी कार्यालय में जब राजभाषा संसदीय समिति दौरा करती है तो वह अपनी रिपोर्ट एवं सिफारिशें सीधे राष्ट्रपति को भेज देती है। होना यह चाहिए कि समिति की सिफारिशें एवं रिपोर्ट की चर्चा संसद के दोनों सदनों में होनी चाहिए ताकि किसी भी समस्या का समाधान निकाला जा सके। चर्चा के उपरांत ही सिफारिशों एवं रिपोर्ट को भारत के महामहिम राष्ट्रपति को भेजनी चाहिए।

राजभाषा कार्यान्वयन में भाषा वैज्ञानिक समस्याएँ भी है। दक्षिण भारतीय भाषा में जहाँ तक मुझे ज्ञान है महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। तमिल में पापी और भाभी के अंतर को स्पष्ट करने के लिए कोई ध्वनि नहीं है। इसकी वजह से तमिल भाषी व्यक्ति को हिंदी की महाप्राण ध्वनियों के उच्चारण में दिक्कत आती है।

जहाँ तक अनुवाद का प्रश्न है उसके संबंध में मेरा यह मानना है कि अनूदित हिंदी ऐसी होनी चाहिए जो आम आदमी पढ़ सके और उसके अर्थ को समझ सके। अनुवाद कर्मियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी भाषा का अस्तित्व व स्तर कायम रहे। बेवजह उसमें अलंकरण नहीं होना चाहिए। इस संबंध में मेरा यह भी कहना है कि यदि अनुवादक द्वारा सरल शब्दों के प्रयोग के बाद भी भाषा किसी पाठक को कठिन लगती है तो मैं यह कहूँगा कि यदि अंग्रेज़ी का पाठ पढ़ते समय पाठक गूगल से या शब्दकोश से अर्थ जानने का प्रयास कर सकता है तो हिंदी का पाठक ऐसा क्यों नहीं कर सकता। सीधी सी बात यह है कि हिंदी पाठ को समझने के लिए बस हमें अपना मन बनाना होगा और मानसिकता बदलनी होगी। आज ज़रूरत इस बात की है कि हम हिंदी के सामर्थ्य को समझें। हिंदी अपने आप में बहुत–ही समृद्ध भाषा है। भारत में ज़्यादातर भारतीयों हेतु भावों की अभिव्यक्ति में हिंदी भाषा अंग्रेज़ी भाषा से बहुत आगे है। यदि हिंदी भाषा को कोई व्यक्ति जानने का ही प्रयत्न न करे तो उसमें हिंदी का कहाँ कोई दोष है। इसे हिंदी का दोष न कहकर मानसिकता का दोष कह सकते हैं।

भारतीय होने के नाते हमें इस बात पर गर्व होना चाहिए कि हम हिंदी बोलते, जानते और समझते हैं। हमें हिंदी पर अभिमान होना चाहिए। हिंदी के साथ भारत की हर भाषा व बोली हमारे स्वाभिमान का प्रतीक है। इन सभी भारतीय भाषाओं व बोलियों में भारत मुखरित होता है। हमारी भाषाएँ व बोलियाँ संस्कृति की परिचायक हैं। जब तक हम हिंदी से अपना संपर्क बनाए रखेंगे वह ज़िंदा रहेगी। हमें हिंदी से संपर्क बनाए रखने की ज़रूरत है ताकि यह भारतीय संस्कृति की परिचायक बनी रहे।

हिंदी अधिकारी और संपादक–जामिया दर्पण
राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ, कुलसचिव कार्यालय,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का प्रश्न

डी. अरुणा

स्त्री–अस्मिता के केंद्र में 'अस्मिता' केन्द्रीय धुरी है जिसने सदियों से हाशिए पर पड़ी स्त्री को बहस के केद्र में ला दिया है। स्त्री–पुरुष में जैविक भेद तो प्रकृति प्रदत्त है, लेकिन लैंगिक (जेंडर) भेद के कारण उसकी अस्मिता संदिग्ध हो गई। किसी भी व्यक्ति को एक सीमा तक ही दबाया जा सकता है, अवसर पाते ही वह अपनी अस्मिता (पहचान), अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर उठता है, फिर स्त्री तो इस पावन धरा की मानवी और बौद्धिक प्राणी है, तो उसकी अस्मिता को बलपूर्वक कब तक दबाया जा सकता है? वर्षों से सुसुप्तावस्था में पड़ा 'आधी आबादी' का भाव जाग उठा और वह इतने प्रखर रूप में हमारे सामने आया कि दुनिया में स्वयं को स्थापित कर दिया। स्त्री–विमर्श के केंद्र में 'स्त्री–अस्मिता' इसी भाव से परिचालित है।

स्त्री–अस्मिता वास्तव में क्या है? एक स्त्री का अस्तित्व, उसकी अपनी पहचान। उसका यह अस्तित्व, उसकी यह पहचान समाज में किसके द्वारा तथा किन मानदंडों द्वारा और कैसे निर्धारित की जायेगी ? क्या उसका मूल्यांकन स्वयं स्त्री करेगी या फिर पुरुष या दोनों मिलकर करेंगे? यदि स्वयं स्त्री अपनी अस्मिता स्थापित करती है तो वह एक हद तक सही है, किन्तु यदि पुरुष उसकी अस्मिता का मूल्यांकन करेगा तो निश्चय ही उस अस्मिता का कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा क्योंकि पुरुष द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, यथार्थ के अधिक समीप नहीं। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा के वक्तव्य को उदधृत करना समीचीन प्रतीत होता है कि–''हमें न जय चाहिए, न किसी से पराजय; न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृत और साधन संपन्न बहिनें इस दिशा में विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें सन्देह नहीं।'' स्त्री अपने बल पर अपनी अस्मिता की पहचान करना चाहती है। किसी की जय या पराजय करना उसका लक्ष्य नहीं, वह खुद के अधिकार को चाहती है।

स्त्री–अस्मिता की बात हमें 'समय–सापेक्ष' होकर करनी चाहिए। यानी स्त्रियों की अस्मिता पर सही ढंग से बात वेदों और पुराणों के आधार पर नहीं; आज की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए स्त्रियों के लिए बनाए गए कानूनों के आधार पर करनी होगी। इसके साथ–साथ उसके आर्थिक अधिकारों, भेदभाव की समाप्ति, हो रहे जुल्म की समाप्ति के विषय पर बात किए बिना और इन समस्याओं को समझे बिना इस समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता और न ही इसके बिना महिलाओं की अस्मिता की बात आगे बढ़ सकती है। प्रसिद्ध नारीवादी नासिरा शर्मा के शब्दों में– ''एक औरत इन्सान की तरह इंसानियत और अस्मिता के साथ जी सके तो वही उसकी स्वतंत्रता होगी। एक औरत को केवल औरत होने के कारण कष्ट–प्रताड़ना को सहना न पड़े, बल्कि उसकी इच्छाओं गुणों को देखते हुए, समाज के परिवेश के अनुसार उसे वह सब कुछ मिलना चाहिए जो एक अच्छे नागरिक को मिलना चाहिए। एक औरत को यह आजादी होनी चाहिए कि वह जिस तरह से रहना चाहे रहे। अपनी जिंदगी की जिसमें खुशी समझती है उसी में जिये।'' स्त्री स्वतंत्रता, सम्मान की माँग करती है, वह अपनी इच्छाओं के अनुसार जीना चाहती है। अपनी अस्मिता के साथ रहना चाहती है। वह भी पुरुष जैसा इन्सान ही है जिसे इंसानियत चाहिए।

स्त्री के स्व की 'पहचान' उसके 'अस्तित्व' से है। जब कोई स्त्री परिवार और समाज में अपनी मर्जी से जीना चाहती है लेकिन जी नहीं पाती है, तब वह परिवार और समाज में अपने अस्तित्व की तलाश करती है। जबकि देखा जाए तो परिवार और समाज में मनुष्य का अधिकांश व्यक्तित्व दूसरों द्वारा निर्धारित होता रहा है। परिवार में 'स्त्री' हो या 'पुरुष' दोनों अपने अनुसार अपने व्यक्तित्व को बनाना या निखारना चाहते हैं। लेकिन "धर्म और सामाजिक अर्थव्यवस्था ने स्त्रियों को शिक्षा और संपत्ति के अधिकार तथा सामाजिक हैसियत से वंचित कर उसे विवाह और परिवार से इस तरह बाँध दिया कि वह अपनी स्वतंत्रता का विसर्जन और आत्मसमर्पण करने की कीमत पर ही सम्मान की जिंदगी बिता सकती है। धर्म ने परिवार और विवाह की नीतितत्व, पतिव्रत और यौन–शुचिता की अनिवार्यता सुनिश्चित कर स्त्री की अस्मिता, स्वायत्तता और संबंधों की स्वाधीनता पर अंकुश लगा दिया। इस प्रकार स्त्री को आज तक समाज और परिवार में बेटी, बहू, माँ के रूप में ही पहचाना जाता रहा है। लेकिन आज की स्त्री इन तमाम बंधनों से निकलकर 'स्वतंत्र व्यक्तित्व' के रूप में अपनी 'पहचान' कायम करना चाहती है। फिर यहीं से शुरू हो जाती है उसकी अपनी अस्मिता और अस्तित्व की तलाश।

'स्त्री–अस्मिता' एक व्यापक संकल्पना है जिसके तहत प्रत्येक महिला को उसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता के विकास, प्रदर्शन और

प्रयोग पर पूरी आधिकारिता प्राप्त है। वस्तुतः प्रकृति प्रदत्त खूबियों और सौन्दर्य को अपने सम्मान और आत्मसंयम के हिसाब से इस्तेमाल करना प्रत्येक व्यक्ति का जन्मजात अधिकार है। लेकिन विकास और शक्ति की दौड़ में थोड़ा आगे निकले समूह हमेशा अपने पीछे आने वाले वर्गों के अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। वैश्विक आबादी का 'आधा हिस्सा' इसी विडम्बनापूर्ण अन्याय का शिकार है। इसी 'अन्याय' को दूर करने के लिए साहित्य में 'स्त्री–अस्मिता', 'स्त्री–विमर्श', 'दलित–विमर्श', 'आदिवासी–विमर्श' इत्यादि परिचालित हो रहे हैं। स्त्री–अस्मिता के सम्बन्ध में 'स्त्री–विमर्श का मामला व्यक्तिगत नहीं सामाजिक है। स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के लिए व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा। हालाँकि स्त्री अपनी स्थिति को पहचान रही है, अपनी अवस्था को स्वयं आवाज़ दे रही है और खुद महसूस कर रही है कि अपने अधिकार की लड़ाई उसे खुद लड़नी है। यह चित्रण साधारण–सा सतही ढंग से नहीं, बल्कि आक्रामक भाव से स्त्री की अस्मिता, स्त्री की पहचान, स्त्री की शक्ति, स्त्री की लड़ाई और उससे जुड़े तमाम सवालों को लेकर है। वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पर चर्चा–परिचर्चा हो रही है, इस चर्चा में स्त्री की समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा की जा रही है।

शर्मिला रेगे सवर्ण नारीवादी संगठन के महत्व को नकारती हैं। लेकिन दलित स्त्रियों के प्रश्न पर दलित स्त्री संगठनों का होना आवश्यक मानती है। शर्मिला रेगे का मानना है कि वाम वाले झुकाव ने नारीवादी संगठनों ने जाति को वर्ग में विलीन कर दिया। स्त्रियों को केंद्र में रखने वाली नारीवादी राजनीति उभर नहीं सकी क्योंकि आन्दोलन में दलित आदिवासी तथा अल्पसंख्यक समुदायों की स्त्रियों के मुद्दों को उठाया नहीं, वह मुद्दे उठे जरूर और कुछ ठोस उपलब्धियाँ भी रही।" इस दलित स्त्री की पहचान वाले स्वतंत्र और स्वायत्त संगठन 1990 के बाद बने। अखिल भारतीय स्तर पर बनने वाले संगठनों में ऑल इंडिया दलित विमेंस और नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन फोरम 1994 उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र दलित महिला संगठन की स्थापना 1995 में की गई। इसी प्रदेश के चंद्रपुर में 1996 में गठन हुआ 'विकास वंचित दलित महिला परिषद'। इस संगठन ने मांग की कि 25 दिसंबर को 'भारतीय स्त्री मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया जाए।

दलित स्त्रीवाद की वैचारिकी के निर्माण के संदर्भ में गोपाल गुरु के लेख 'दलित वुमेन टॉक डिफरेंटली' की चर्चा की जाती है। यह लेख 'इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' में अक्टूबर 14 से 21, 1995 के अंक में प्रकाशित हुआ था। नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन (N.F.D.W.) का निर्माण तथा बीजिंग सम्मेलन में दलित महिलाओं की विभिन्न समूहों के रूप में भागीदारी। दलित महिलाओं की 'बात की भिन्नता' को रेखांकित और स्थापित करना इस लेख में गोपाल गुरु का मकसद है। इसके लिए वह दो कारकों की चर्चा करते हैं बाहरी कारक और आंतरिक। बाहरी कारकों में वे उन गैर दलित ताकतों का हवाला देते हैं जो 'दलित स्त्री के मुद्दे का समरूपीकरण' कर रही है। आंतरिक में दलित के बीच पितृसत्तात्मक प्रभुत्व का होना बताते हैं। सत्य के अवबोधन में सामाजिक अवस्थिति को गोपाल गुरु निर्णायक मानते हैं। उनका कहना है कि ''इस तर्क से गैर दलित स्त्रियों द्वारा दलित स्त्रियों के मुद्दे का प्रतिनिधित्व कम वैध और कम प्रमाणिक ठहरता है।" वह यह भी जोड़ते हैं कि दलित स्त्री कार्यकर्ताओं के इस दावे का अर्थ नारीवाद की प्रायोगिक बहुलता का उत्सव नहीं है। दलित स्त्रियों ने महाराष्ट्र में नए किसान आंदोलन के शुरूआती दौर में नारीवाद रेडिकल राजनीति का समर्थन किया था। यह समर्थन जारी नहीं रह पाया क्योंकि किसान संगठनों की ऊँची आवाज से दलित आवाज दब गई। दूसरे किसान आंदोलन समृद्ध किसान की समृद्धि के पक्ष में चला गया और दलित कृषि मजदूरों के हित भुला दिए गए। गोपाल गुरु बताते हैं कि "दलित स्त्री ने दलितपन की व्याख्या कड़ाई के साथ जाति के संदर्भ में की और गैर दलित स्त्रियों द्वारा खुद को दलित मान लिए जाने के दावे को नकारा।" आंतरिक कारणों का विश्लेषण करते हुए गोपाल गुरु का कहना है कि उत्तर अंबेडकर काल में दलित नेताओं ने हमेशा दलित स्त्रियों की स्वतंत्र राजनीतिक अभिव्यक्तियों को गौण समझा है और कई बार उनका दमन किया है।

मुख्य धारा के स्त्रीवाद के दलित स्त्री चिंतकों के कुछ मुद्दों पर असहमति होने के कारण दलित स्त्रीवाद के स्वर उभरने लगे। सन् 2006 में कलकत्ता में स्त्रीवादी कांफ्रेंस में जब बार गर्ल्स डांस कर रही थी तब रजनी तिलक ने मंच पर जाकर उनके डांस करने पर आपत्ति उठाते हुए कहा कि हमें बार गर्ल्स को पिरिमिल्नेरी सेशन में उनके मुद्दों पर बुलाना चाहिए था न कि उन्हें मंच पर जा कर उनके डांस करने के लिए। इस पर पूरे कांफ्रेंस में अगले दिन लम्बी बहस हुई। जिसके बाद दिल्ली की स्वायत संस्था सहेली में भी बैठक हुई और सेक्स वर्क और दलित महिलाओं की स्थिति और उनकी अभिव्यक्ति पर दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ वामपंथी कार्यकर्ता तृप्ता वाही के घर पर दो बैठकें, अनीता भारती के घर पर शालीमार बाग में एक बैठक हुई, तत्पश्चात 2007 अक्टूबर में नागपुर में छाया खोब्रागडे के घर पर हिंदी और मराठी दलित कार्यकर्ताओं और लेखिकाओं के बीच कार्यशाला हुई। तय हुआ कि स्त्रीवाद पर काम करने के लिए समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन पर काम किया जाए।

अनीता भारती का कहना है कि ''दलित स्त्रीवाद को सवर्ण वर्चस्व के नारीवाद से अलग ढंग से समझने की जरूरत है। यदि दलित स्त्री की मुक्ति की बात करनी है तो उसे सबसे पहले जाति से मुक्ति की बात करनी होगी, देह मुक्ति का सवाल दलित स्त्रीवाद का सवाल नहीं है।" दलित स्त्री के श्रम भी गैर दलित स्त्री की तुलना में अलग हैं, जहाँ उत्पीड़न की आशंका अधिक है। डॉ. रजत रानी मीनू का कहना है कि "जब श्रम और यौनिकता के सवाल को जाति के सवाल के साथ

जोड़कर देखते हैं, तो स्त्रीवादी राजनीति का एक अलग परिपेक्ष्य सामने आता है।" वास्तव में पिछले चार–पांच दशकों में स्त्रियों ने अपनी पहचान बनानी शुरू की है।

डॉ. देवेन्द्र चौबे ने कहा कि दलित स्त्रीवाद के प्रसंग में सबसे बड़ा सवाल यह है कि "हमारी सामाजिक या सांस्कृतिक संरचना में दलित स्त्री को कहाँ जगह दी गई है" क्योंकि दलित महिलाएँ हर आन्दोलन में भाग लेती हैं पर उन्हें वक्ता के रूप में मंच पर बैठने का स्थान नहीं दिया जाता है। स्त्रीवादी चिन्तक रमणिका गुप्ता ने कहा है कि "दलित स्त्री के तिहरे शोषण का संघर्ष जाति और पितृसत्ता दोनों से है।" दलित स्त्री का शोषण सवर्ण स्त्री द्वारा अधिक होता है। सवर्ण स्त्री दलित स्त्री का शोषण करती है, वह जाति और आर्थिक कारणों से अपने आपको सवर्ण समझकर दलित स्त्री को नीच समझती है।

भारतीय भाषाओं में दलित स्त्री लेखन को रूप–आकार लिए दो दशक से ज्यादा गुजर चुके हैं। यह पूरा दौर दलित और दलित स्त्रीवादी कार्यकर्ताओं, रचनाकारों के लिए कठिन संघर्ष का दौर रहा। वहीं साथ ही स्त्रीवादी संगठनों ने जाति और पितृसत्ता के गठजोड़ को तवज्जों देने लायक नहीं समझा। सन् 1990 में केरल के कालीकट में चौथे राष्ट्रीय अधिवेशन में जाति आधारित यौन–हिंसा और दलित स्त्री के प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा हुई। सन् 1994 में तिरुपति और सन् 2006 में कोलकत्ता के अधिवेशन भी उल्लेखनीय रहे। जेंडर को जाति से जोड़कर देखने–समझने की अकादमिक गतिविधि क्रमशः गति पकड़ती गई।

इस संबंध में बजरंग बिहारी तिवारी लिखते हैं कि "दलित स्त्रीवादी आन्दोलन से अपने विकास का दूसरा पड़ाव कठिनाईयों से गुजरते हुए सफलतापूर्वक पार कर लिया है। अब उनकी सामर्थ्य और स्वतंत्र स्वायत्त स्थिति पर बहस करने की जरूरत नहीं रही। अस्मितावाद अपनी ऐतिहासिक भूमिका लगभग निभा चुका है। अम्बेडकरी आन्दोलन की विरासत से निकला स्त्रीवादी अपने दम पर अग्रसर है।" अंबेडकरी आंदोलन नकली अभियानों के बीच निर्मित हो रही युवाओं की नई पीढ़ी इन स्त्रीवादियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

"दलित–स्त्री आत्मकथनों में अभिव्यक्त हुए दलित जीवनानुभावों के संदर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष, जातिगज पहचान से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तीसरी मार को झेलने के प्रसंग, घटनाएँ, संघर्ष का चित्रण लेखिकाओं ने किया है।" सबसे महत्वपूर्ण पहलू जो लगभग सभी आत्मकथाओं में उभर कर आया है, पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का निरंतर शोषण, उसके अस्तित्व को बार–बार नकारा जाना, अस्मिता का कुचला जाना और इन प्रवृत्तियों के विरोध में स्त्री का संघर्ष। दलित–स्त्री मध्यमवर्गीय है अथवा निम्नवर्गीय, मजदूर है अथवा सामाजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, दलित और स्त्री होने की पीड़ा का अहसास सभी स्त्रियों का एक जैसा ही है। पूर्वजों के साथ हुए जातिगत शोषण और उत्पीड़न की तन और मन पर उठी वेदना की तरंगें, सभी की एक समान हैं। अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक सी भयावहता, दीनता, लाचारी, और कुचलने जाने की पीड़ा से भर दिया है। यह और भी त्रासद है कि एक इंसान ने धर्म, कर्मफल और भाग्यवाद के झूठ को गढ़कर दूसरे इंसान पर इस प्रकार की जिंदगी थोपी जो मनुष्य को जीने लायक थोड़ी–सी जगह भी नहीं देती।

कौसल्या बैसंत्रीः

"व्यक्तित्व में मनुष्य के आंतरिक तथा ब्राह्य दोनों पक्षों का समावेश रहता है, व्यक्तित्व के अनेक स्तर हो सकते हें, व्यक्तित्व सदा विकासशील होता है तथा इसके बड़े भाग का निर्माण समाज द्वारा, समाज में और समाज के लिए होता है।" जब भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था और सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल नहीं थी, उसी समय साहित्यकार कौसल्या बैसंत्री का जन्म हुआ।

लेखिका जब चौथी कक्षा में थी, तब उनकी शिक्षिका इनसे काम करवाती थी। वह शिक्षिका कभी उन्हें होटल से चाय मँगवाने, कभी कुछ सामान लाने के लिए भेज दिया करती थी। वह दूसरी लड़कियों को नहीं भेजती थी, क्योंकि लेखिका गरीब घर की लड़की थी इसलिए उनसे काम आसानी से हो जाया करता था। लेखिका आगे कहती हैं, "जाँचने की कॉपियों का बड़ा बंडल मेरे हाथ में पकड़ाकर अपने घर पहुँचाने को कहती। मेरा अपना बस्ता और जाँचने की कॉपियों का बंडल लेकर आने से मेरे पाँव दुखने लगते थे। घर स्कूल से काफी दूर था। कुछ लाने को भूल जाती तो मुझे अपने घर दौड़ाती।" लेखिका छोटी बच्ची थी तिस पर गरीब घर की लड़की जो थी। मनुष्य की हैसियत उसके रहन–सहन और पैसे पर निर्भर होता है।

लेखिका जब कॉलेज में पढ़ाई कर रही थी, उस समय उन्होंने कॉलेज के कई कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लिया था। एक बार कॉलेज में वाद–विवाद प्रतियोगिता में भी भाग लिया। विषय था–"स्त्री पुरुष के मार्ग का रोड़ा है।" इस विषय पर लेखिका ने काफी अच्छा बोला कि दलित समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं थी। दलित को समाज व्यवस्था ने शिक्षा से वंचित रखा था। उसमें दलित नारी की कैसे बात हो सकेगी क्योंकि वह अंतिम सीढ़ी पर है? क्योंकि दलित है इसलिए उसे तो अलग नजर से देखा जाता है। लेखिका के शब्दों में "हमारी बस्ती में स्कूल नहीं था। परंतु पास में ही गड्डी गोदाम नाम की बड़ी बस्ती थी, वहाँ नगरपालिका का स्कूल था जिसमें केवल लड़के ही जाते थे। लड़की एक भी नहीं जाती थी। बस्ती में किसी भी जाति में लड़के–लड़कियों को पढ़ाने में माँ–बाप की रूचि भी नहीं

थी। उस समय शिक्षा का उतना प्रचार–प्रसार भी नहीं था। लेखिका को स्कूल जीवन में बहुत ही कठिनाई के दिन देखने को मिले। वह गरीब और अछूत होने के कारण हर क्षण अपमान महसूस करती और डरी हुई रहती थी। अस्पृश्यता की भावना उनके मन से नहीं जाती थी। स्कूल में बिताए गए दिनों को याद करके लेखिका अपनी आत्मकथा में लिखती है कि –"मैंने स्कूल के किसी कार्यक्रम, जैसे खेलकूद, नाटक में कभी भाग नहीं लिया क्योंकि मुझमें हीनता ही भावना भरी रहती थी। मैं खो–खो, कबड्डी वगैरह अच्छा खेल सकती थी। परंतु मैं आगे बढ़ने से ही डरती थी। मैं अस्पृश्य हूँ, यह भावना मेरे मन से कभी जाती ही नहीं थी। मुझे स्कूल में रखे पानी के घड़े से पानी निकालकर पीने में भी डर लगता था।"। इस तरह दलित स्त्री को हर स्तर पर भेदभाव जनित वातावरण प्रदान किया जाता है जिसमें रहकर वे अपना सम्पूर्ण विकास नहीं कर पाती है और आत्मसम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए उन्हें निरंतर परिवार और समाज में संघर्ष करना पड़ता है।

कौसल्या बैसंत्री एक सामाजिक कार्यकर्ता के साथ शादी करना चाहती थी। ऐसे में देवेन्द्र कुमार से परिचय हुआ। लेखिका ने देवेन्द्र कुमार से शादी करने के लिए आग्रह किया था, मगर वह शादीशुदा थे। बाद में उनकी पत्नी की मृत्यु हो जाने के बाद उन्होंने लेखिका के साथ शादी की बात की। लेखिका ने असमंजस की दशा में सोचा–"हाँ कहूँ या ना... भारी मन से स्वीकृति दे दी। इसका कारण यह था कि उस वक्त इतना पढ़ा–लिखा और सामाजिक कार्य करने वाला व्यक्ति अस्पृश्य समाज में नजर नहीं आया। देवेन्द्र कुमार एम.ए., एल.एल.बी. करके डी.लिट. के लिए रिसर्च कर रहे थे। उन्होंने मुझे मोहित और प्रेरित किया था दूसरी बात यह थी कि मेरी उम्र इक्कीस साल हो रही थी। माँ–बाबा चिंतित थे। उन्होंने भी बहुत भारी मन से स्वीकृत दे दी।" लेखिका का विवाह 16 नवंबर 1947 के दिन हुआ।

लेखिका को अपने प्रारंभिक जीवन में बाहरी जगत के कटु अनुभव तो थे ही लेकिन शादी के बाद भी उन्हें वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। देवेन्द्र कुमार आत्मकेंद्रित आदमी थे। लेखिका और उनके पति का वैचारिक मतभेद रहा। परिणाम यह हुआ कि लेखिका को उनसे भावनात्मक दूर होती गई। कौसल्या अपने शब्दों में बताती हैं–"देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर में काम और घर आकर लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किसी चीज़ की जरूरत है इस पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया।" एक स्वतंत्रता सेनानी भी अपनी पत्नी को दासी के रूप में देखता था। वे पढ़े–लिखे स्वतंत्रता सेनानी, ताम्रपत्र प्राप्त किए हुए थे। किन्तु वे स्त्री के प्रति कोई संवेदना नहीं रखते थे। यही कारण था कि पत्नी से लड़ाई व गाली–गलौच के साथ–साथ उससे मारपीट करते थे। समाज में ऐसा करने के लिए कोई स्थान नहीं था पर लेखिका के पति को स्वतंत्रता सेनानी का ताम्रपत्र मिला और पेंशन भी। सरकार ने उनके कार्य की प्रशंसा भी की। वह व्यक्ति जो अपने घर में अपनी पत्नी से लड़ाई करता है, उसे गंदी गालियाँ देता है और उस पर हाथ भी उठाता हो ऐसे इन्सान के साथ कैसे निभ सकता है। एक बार प्रसूति के दिन एकदम नजदीक थे फिर भी उनके पति ने दौरे का कार्यक्रम बनाया। लेखिका जनरल वार्ड में भर्ती हो गई।

वहाँ पर इलाज मुफ्त में होता था। इनके पास पैसे नहीं थे। देवेन्द्र कुमार दौरे पर थे। देवेन्द्र कुमार अस्पताल आए और उसे प्राइवेट वार्ड में रखने को कहा और लेखिका से बिना बात किए चले गए। इस बात के लिए लेखिका को बहुत दुःख हुआ। अपने गुजरे हुए दिनों को याद करते हुए वह कहती हैं कि "प्रसूति के प्रसंग में अस्वस्थ थी, दस दिन से भूखी रहना, पति का न मिलना और दफ्तर के एक फिल्म ऑपरेटर द्वारा 30 रुपए देकर अस्पताल का बिल चुकाना और अपने पत्नी का घर छोड़ना। अस्पताल का बिल 200 रूपए का था। रोज के तीन रूपए के हिसाब से दस दिन के कमरे का किराया। इस दर्दभरी कहानी को याद करते हुए लेखिका बताना चाहती है कि, क्या ऐसे पति से प्यार या उस पर विश्वास हो सकता है? इस प्रसंग को याद करते ही मेरा खून खौलने लगता है।" देवेन्द्र द्वारा दी गई पीड़ा एक उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुष द्वारा स्त्री पर अत्याचार और शोषण है। कौसल्या बैसंत्री ने 'दोहरा अभिशाप' द्वारा नारी और दलित नारी के जीवन में घटित दुखद घटनाओं का वर्णन किया है। ऐसी घटनाएँ अधिकतर स्त्रियों के साथ घटती हैं।

कौसल्या बैसंत्री अपने व्यक्तिगत जीवन में जैसी सच्ची व ईमानदार थी, वैसे ही साहित्य में भी रहीं। "भारतीय जीवन के आदर्शवादी विचारों और व्यवहारों में जो झूठ की दीवारें खड़ी हुई थी, उन्हें गिराने में कौसल्या ने अपनी कलम को हथौड़ा बनाया, जीवन का कोई भी कार्य उनके प्रहारों से बच नहीं सका।" लेखिका ने अपनी जीवन–गाथा को आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है। लेखिका ने मराठी में हिंदी की कहानियों का अनुवाद भी किया लेकिन लोगों ने उनका सन्दर्भ छुपा लिया। लेखिका कहती हैं कि–"मैं लेखिका नहीं हूँ, ना साहित्यकार, लेकिन अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातियता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी, इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने प्रश्न को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे। स्त्री अपना अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती है और जीवन भर घुटन में जीती रहती है। समाज को दिखाने के लिए ऐसे अनुभव सामने लाने की जरूरत है।" भारतीय समाज में दलित नारी को किस प्रकार देखा जाता है, इसका आईना 'दोहरा अभिशाप' के माध्यम से देखा जा सकता है।

अम्बेडकर के प्रति दलित समाज में बहुत ही इज्जत थी। कौसल्या 'शेड्यूल कास्ट स्टूडेंट फेडरेशन' की संयुक्त सचिव थी। गाँधीजी के विचारों पर चलने वाला एक लड़का कौसल्या को स्टूडेंट यूनियन के चुनाव के समय वोट के बारे में मदद करने के लिए पूछता है, लेखिका कहती है–"मैं फेडरेशन की समिति से पूछकर सूचित करूँगी। हमारा विद्यार्थी फेडरेशन बाबासाहब की विचारधारा से बहुत प्रभावित था और कांग्रेस का साथ देना दूर की बात थी। बाबासाहब और गांधी जी के कुछ मामलों में गहरे मतभेद थे।"

लेखिका की सामाजिक कार्यों में रूचि बढ़ गई। लेखिका कहती है, "थोड़ा भाषण देना भी आ गया था। नागपुर में लोग मुझे कभी–कभी बाबा साहब की जयंती पर भाषण देने के लिए बुलाते थे। एक–दो बार नागपुर के बाहर भी भंडारा, उमरेड, दूर खड़कपुर आदि से भी बुलावा आया था। मिसेज शिवराज (जो तमिलनाडु की दलित नेत्री थी) के अंग्रेजी भाषण का मराठी में अनुवाद करके सुनाया था। मैं तब इंटरमीडिएट में पढ़ती थी।"

कौसल्या को सामाजिक कार्य में रूचि तो थी परंतु जब वह काम करती रही तो निराशा ही हाथ लगती है। श्रीमती वेलायुधन (केरल की दलित नेत्री) और श्रीमती लता दरडे तथा कुछ अन्य उत्साही महिलाओं के प्रयत्नों से 'महिला जागृति परिषद्' नामक संस्था बनी। यहाँ पर इन्हें कुछ सुधार नजर नहीं आया। कौसल्या ने अपना कार्य जारी रखा उन्होंने जो सवर्ण नारियों की संस्थाएँ थीं, उनसे मिलना शुरू किया और दलितों की समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया। लेखिका कहती है–"भारत के कई भागों में कार्यरत महिला संस्थाओं से भी हमने विनती की कि वे सेमिनार में शामिल हों। किन्तु कोई नहीं आया, सिर्फ पत्र लिखे। हमने भी अपने सेमिनार की रिपोर्ट महिला संस्था को नहीं भेजी।" इससे यह पता चलता है कि दलित महिलाओं के बारे में वे कितनी सजग थीं।

निष्कर्षः

दलित जीवन हजारों सालों से दुख, पीड़ा तथा अनेक प्रकारों के अमानवीय यातनाओं से भरा हुआ है। इन अमानवीय यातनाओं को आज तक कोई भी इतिहासकार या साहित्याकार सही ढंग से रेखांकन नहीं कर पाया है। इसी उद्देश्य को पूरा करने के पक्ष में आज दलित आत्मकथाएँ हमारे सामने आई हैं। आत्मकथाएँ दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं क्योंकि दलित आत्मकथाकार यह बताना चाहते हैं कि जो नारकीय और दस्तावेज पूर्ण जीवन उन्हें मिला, उसमें व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं, बल्कि व्यवस्था विशेष का है, इसलिए दलित आत्मकथाएँ व्यवस्था परिवर्तन की माँग भी करती हैं।

दलित आत्मकथाएँ दलित जीवन का महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो दलित समाज की आने वाली पीढ़ियों को आगे बढ़ाने की प्रेरणा देती रहेगी। ये आत्मकथाएँ वंचितों और अस्पृश्यों की सामाजिक सच्चाईयों का बयान देते हुए व्यक्तियों और जातियों के दुःख–दर्द, व्यथा–चेतना, अंधविश्वास, अमानवीय परम्पराओं, अशिक्षा और स्त्रियों के प्रति पशु तुल्य व्यवहार की वास्तविकता पर प्रहार करती है। दलित स्त्रियों की आत्मकथाओं में दर्ज स्त्री जीवन का इतिहास, स्त्री सवालों से रूबरू कराने और स्त्री जीवन में सुधार लाने में मददगार साबित होगा। अतः कहा जा सकता है कि दलित स्त्री लेखन जाति व पितृसत्ता के विरुद्ध आक्रोश के रूप में उभर कर सामने आया है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1) बैसंत्री, कौशल्या, 1999, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, दिल्ली
2) टाकभौंरे, सुशीला, 2011, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
3) राम नरेश राम, 2013, दलित स्त्रीवाद की आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति, नई किताब, शाहदरा, दिल्ली
4) विमल थोरात, 2010, दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, लि. (प्रा.)
5) श्रीवास्तव, गरिमा, 2003, नारी चेतना और कृष्णा सोबती, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली
6) तिलक रजनी, रजनी अनुरागी, 2011, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
7) डॉ. सुशीला टाकभौरे, 2007, यह तुम भी जानो, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
8) बिहारी, बजरंग 2015, भारतीय दलित आन्दोलन और चिंतन (साक्षात्कार आधारित), शब्द रंग प्रकाशन, पश्चिम विनोद, दिल्ली

पत्र–पत्रिकाएं

1) तेजसिंह, 2004, अपेक्ष, जुलाई–सितम्बर, नई दिल्ली
2) संजीव चन्दन, 2018, स्त्री काल, जनवरी, नई दिल्ली
3) रमणिका गुप्ता, 2008, युद्धरत आम आदमी, अक्टूबर–दिसम्बर, नई दिल्ली

पी.एच–डी शोधार्थी (हिंदी)
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

घर के गमलों के पौधे एवं रख–रखाव

डॉ. भारत भूषण

आजकल शहरों में प्रदूषण के बढ़ते स्तर को देखते हुए गमलों में लगने वाले पौधों की मांग व जरूरत बढ़ती जा रही है। इसलिए हर कोई बढ़ते हुए प्रदूषण के प्रभाव को कम करने के लिए गमलों में लगे पौधों का प्रयोग बढ़–चढ़कर कर रहा है। घर छोटा हो या बड़ा गमलों वाले पौधे हर घर में मिल ही जाते हैं। ये पौधे घर व बाहर के वातावरण से Co_2 (कार्बन डाईऑक्साइड) ग्रहण करके O_2 (ऑक्सीजन) प्रदान करते हैं जिससे काफी हद तक प्रदूषण को कम किया जा सकता है। गमलों में लगे पौधों का इस्तेमाल घर के अन्दर, घर के मुख्य द्वार पर, बालकनी में, घर की दीवारों, खिड़कियों, छतों पर, किचन गार्डन इत्यादि में आमतौर पर किया जाता है। बड़े शहरों में तो गमलों वाले पेड़–पौधे घर में लगाना स्टेटस व फैशन बन चुका है। पेड़–पौधों की बढ़ती माँग व उत्सुकता को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि गमलों में लगे पेड़–पौधों के रखरखाव तथा उनको लम्बी अवधि तक घर में कैसे बचाएँ। इसलिए गमलों में लगे पेड़–पौधों की कल्चरल प्रैक्टिस व तकनीक की उचित जानकारी आवश्यक है जिससे गमलों में लगे पेड–पौधों के सूखने के नुकसान से बचा जा सके। इसलिए जब भी गमलों में लगे पौधों का चयन करें तो यह सुनिश्चित कर लें कि पौधे छाया में उगने वाले हैं या धूप में। इसके साथ यह भी ध्यान रखें कि किन पौधों को कम पानी की आवश्यकता है और किन पौधों को ज्यादा पानी की। कुछ पौधों को छाया में रखने के बाद, पौधों को रोजाना या सप्ताह में धूप में रखना भी जरूरी है। जब भी कोई पौधा खरीदें तो इसकी जानकारी नर्सरी से भी ले सकते हैं। घरों में प्रयोग होने वाले कुछ पेड़–पौधों की देखरेख निम्नानुसार की जा सकती है।

1. **सहारा देकर ऊपर चढ़ने वाले पत्तीदार पौधे (Climbing and Trailing Foliage plants):** कुछ पौधे जो घरों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं इनको सहारा देकर गमलों में उगाया जाता है। इन को लताओं (creepers) वाले पौधों के नाम से भी जाना जाता है। इनमें मुख्य पौधे जैसे ficus pumila, Ficus radicans variegato, monstera deliciosa, money plant and hederahelix इत्यादि।

2. **बुशी और सीधे पत्तेदार पौधे (Bushy and upright foliage plants):** इनमें वे पेड़–पौधे आते हैं जिनकी पत्तियाँ चमकदार, चित्तीदार सुन्दर होती हैं। कुछ पौधे हरे–भरे रहते हैं। जैसे Araucaria excelsa, Aralia Sp,. Calathea Sp., Aglaonema Sp., Caladium Sp, Dracaena Sp., Dieffenbachia Sp., Sansevieria Sp. and Crotons इत्यादि।

3. **घर में लगने वाले फूलों के पौधे (Flowering House plants):** घरों में लगने वाले ये पौधे जो आकर्षक पत्तेदार होते हैं, साथ ही साथ उन पर आकर्षक फूल भी होते हैं। इन्हें सजावट के उद्देश्य से घरों में लगाया जाता है। इनमें मुख्यतः Azalea Sp., Chrysanthemum Sp., Coleus and Geranium Sp., Kalanchoe Sp. इत्यादि शामिल हैं।

4. **कंद (बल्ब) द्वारा उगने वाले पौधे (Bulbous Plants):** इस समूह के पौधे गमलों में जड़ कंद से तैयार किए जाते हैं। इन पौधों पर फूल आने के बाद घरों के अन्दर व बाहर रखे जा सकते हैं। ये जड़ कंद वाले पौधे बहुत सुन्दर लगते हैं। सर्दी के दिनों में ये पौधे नर्सरियों में आसानी से मिल जाते हैं। ये पौधे मुख्यतः Daffodils, Crocus, Hyacinths, Tulips, Lilies, Amaryllis इत्यादि हैं।

5. **फर्न व पाम वाले पौधे (Ferns and Palms):** कुछ फर्न व पाम की प्रजातियों के पौधों का इस्तेमाल घरों के अन्दर व बाहर छायादार स्थानों में सजावट के लिए व प्रदूषण को कम करने के लिए बहुत होता है। इनकी हरी–भरी पत्तियाँ बहुत आकर्षक होती हैं। इन पौधों को नमूने के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इनमें फर्न जैसे Adiantum Sp. o Asplenium Sp. vkSj ike tSls Cycas Sp. Rhapis excels Howea Sp., Areca Palm, China Palm, Cane Palm, Caryotamitis, Phoenix dactytifera (Fishtail Palm), (Date Palm) Pritchardia filifera (Fiji Fan Palm) इत्यादि शामिल हैं।

6. **घरों में रखे जाने वाले गुलाब के पौधे:** हालाँकि गुलाब के पौधे को घर में उगाने के अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। फिर भी कुछ प्रजातियाँ घरों में बनी क्यारियों, बड़े आकार के गमलों में छतों पर बने टेरीस गार्डन में आसानी से उगाया जा सकता है। ये प्रमुख प्रजातियाँ जैसे All Gold, Lilae charm और Red wander इत्यादि।

7. **घर में रखे जाने वाले कैक्टस व स्कूलेन्ट्स (Indoor Cactus & Succulent):** अधिकांश कैक्टस व स्कूलेन्ट्स को गरम व उचित तापमान की आवश्यकता होती है। लेकिन कुछ ऐसी भी प्रजातियाँ होती हैं जिनको अर्द्ध छाया व छाया में बखूबी उगाया जा सकता है। ये कैक्टस व स्कूलेन्ट्स छोटे गमलों,

प्लेटों, ट्रे व टेरारियम लगाकर घर की खिड़कियों, बालकनी तथा कॉर्नर सजाने के लिए किया जाता है। ये पौधे हैं – Aeonium haworthii, Agave americana-Marginata, Aloe Variegata, Opuntia Sp., Sedam, Crassula arborescens, Kalanchoe Sp. कुछ epiphytic cactus; Aporo cactus Sp., Epiphyllum Sp., Zygo-cactus इत्यादि।

8. **बोनसाई व लघु पौधे (Bonsai or miniature plants):** बोनसाई व लघु पौधों को बनाने की कला प्राचीनकाल से जापान में होती आ रही है। अब इस बोनसाई कला को लगभग सभी देशों में पसंद किया जा रहा है। बोनसाई कला से पौधे को विभिन्न आकृति व आकार में बदलकर एक आकर्षक, खूबसूरत पौधा बनाया जा सकता है। मुख्यतः बोनसाई पौधों को बड़े–बड़े होटलों, घरों, दफ्तरों व पार्कों के मुख्य द्वार तथा विशिष्ट स्थानों पर सजावट हेतु रखा जाता है। बोनसाई व लघु पौधों को बनाने के लिए निम्नलिखित पौधों की प्रजातियाँ हैं: Adansonia digitata, Adenanthera Pavonina, Bombax Malabaricum, Juniperus Sp., Pinus Sp., Fieus Sp., Adenium Sp., Azalea Sp., Hemelia Sp., Murraya Sp. o Wisteria Sp. इत्यादि।

पौधों के रख–रखाव के तरीके: गमलों में लगने वाले पौधों के रखरखाव करने के लिए निम्नलिखित मुख्य बातें जरूरी हैं:

(क) गमलों का चयन (selection of pots) : नर्सरी से पेड़–पौधा खरीदते समय यह ध्यान देना जरूरी है कि घर के अन्दर व बाहर सूर्य की रोशनी, हवा व जगह का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। यदि घर के अन्दर जगह की कमी होती है तो छोटे साइज के गमलों का चयन करना उचित होता है जिनको आसानी से उठाकर घर के बाहर व बालकनी में रखा जा सके जिससे उनकी कर्षण क्रिया (cultural practice) व प्रचूर मात्रा में धूप मिलने के बाद उन पौधों को घरों में वापस लाया जा सके।

वैसे तो आजकल बाजारों व नर्सरियों में विभिन्न तरह के गमले उपलब्ध हैं। परन्तु मिट्टी के गमले पेड–पौधों की अच्छी वृद्धि (growth) व पुष्टी (health) के लिए सर्वोत्तम होते हैं। इसलिए मिट्टी के गमलों (earthen pots) में पौधों को गलाकर, फिर बड़े colourful planters (plastic, fibre and ceramic) में घर के अन्दर रखा जा सकता है क्योंकि मिट्टी के गमलों में पौधों की जड़ों (roots) को हवा (areation) व पानी (moisture) भरपूर मात्रा में मिलती है। हालाँकि गमलों का साइज पौधों की प्रजातियों के अनुसार निर्भर करता है। फिर भी छोटे घरों में 10–30 से.मी. के मिट्टी के गमले उचित होते हैं। आज के दौर में होर्टिकल्चर की नई–नई तकनीकों से यह भी सरल हो गया है कि घरों व दफ्तरों में किसी भी साइज के pots, planters, trays, vertical stands, bottles, hydroponics pipes etc. का उपयोग किया जा सके। इनके अन्दर एक विशिष्ट तरह के (Plant mixture) पौध खाद का प्रयोग किया जाता है। यह पौध खाद मिश्रण पौधों की जड़ों को उचित मात्रा में हवा, पानी व पोषक तत्त्वों की पूर्ति करता है जिससे पौधा सही बना रहता है।

(ख) गमलों की खाद (Pots mixture): पौधों की वृद्धि के लिए तीन भाग अच्छी गार्डन soil, एक भाग गली सड़ी पत्ती की खाद (leaf mould), एक भाग अच्छी गली–सड़ी गोबर की खाद (cow manure)] एक भाग coarse river sand व एक मुट्ठी बोन मील (bone meal) अच्छी होती है। इसके अलावा नर्सरी से बनी हुई पेड़–पौधों की खाद आसानी से मिल जाती है। इस खाद के मिश्रण में वर्मी कम्पोस्ट, sphagnum peat, river sand, perlite, vermiculite व अन्य पोषक तत्व तथा कीड़ों को मारने की दवाई उचित मात्रा में मिली रहती है जो पौधों की वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम होती है।

(ग) पौधों हेतु पानी की जरूरत (Watering of Plants) : पौधों को रोज़ाना व उनकी आवश्यकता के अनुसार पानी देने की जरूरत होती है जिससे पौधों को हरा–भरा व जीवित रखा जा सके। इसलिए पानी का उचित प्रबन्ध होना अति आवश्यक है। कुछ पौधों को कम तथा कुछ पौधों में ज्यादा पानी की जरूरत होती है। इसके अलावा बहुत अधिक मात्रा में पानी डालने के कारण पौधों की जड़ों में हवा का संचार रूक जाता है जिससे पौधे की जड़े सड़ने–गलने लगती हैं। इस कारणवश पौधा सूखने लगता है। इसलिए गमले के पौधों में पानी लगाते डालते यह ध्यान देने की जरूरत है कि गमले में मिट्टी हल्की सूखी हो। यह सुनिश्चित करके ही पौधों में पानी डालना चाहिए।

इसके विपरीत woody flowering पौधों को कम पानी की आवश्यकता होती है। उन पौधों में फूल (flower) आने के समय अधिक मात्रा में सिंचाई करने से फूलों की कमी हो जाती है या उन पर फूल खिलते ही नहीं हैं। मुख्यतः सर्दियों में पौधों को एक दिन के बाद (alternate day) पानी देने की आवश्यकता होती है और गर्मियों में पौधों को रोजाना व अधिक गर्मी होने पर दिन में दो बार पानी की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए अपने घरों व दफ्तरों में लगे गमलों के पेड़–पौधों का रखरखाव आसानी से किया जा सकता है।

उद्यान विशेषज्ञ
उद्यान विभाग, जामिइ

दलित साहित्य और वैचारिकी का अन्तः संबंध

डॉ. मुकेश मिरोठा

जिस समाज के ऊर्जामयी जीवन को निचोड़कर रख देने वाला पीड़ादायक अनुभव साथी हो, निस्पंदन कर देने वाली गरीबी हो, दर्द में सिक्त अतीत हो, अपमान, अत्याचार का भीषण वर्तमान हो, उस समाज, समुदाय या वर्ग में किंचित चेतना का प्रस्फुटन अगर होता है तो वह दीर्घगामी, चेतना सम्पन्न, विरोध, विद्रोह की तीक्ष्ण धार लिए हुए होता है। संकटों के बवंडर में भी वह दृढ़ स्तम्भ की भांति स्थिर रहकर समुदाय में ज्ञान चेतना का निरंतर प्रचार–प्रसार करता रहता है। सामंतवाद, पूँजीवाद का धुर विरोध करता हुआ वह चेतना के नए क्षितिज की तरफ धावित रहता है। उसके अनुभवों की ताकत सामाजिक परिवर्तनों का स्वर बुलंद करती है। ऐसा कोई धीमा स्वर भी उसके पीड़ित अनुभवों को साहस का नया औजार देने में सक्षम होता है। ऐसे समाज का यथार्थवादी स्वरूप उसके प्रतिरूपों में झलकता रहता है। साहित्य, कला, संगीत, राजनीति, संस्कृति, आर्थिक और तो और धार्मिक स्तर पर भी ऐसा समाज नए सिरे से सोचना प्रारम्भ कर देता है। आधुनिकता, बाजारवाद, भूमंडलीकृत वैश्विक परिस्थितियों के मध्य तकनीक और साहित्य का सहारा लेकर ऐसा समाज ग्लोबल बनता चला जाता है। अब उसकी परेशानी, दर्द और दिनचर्या एक 'क्लिक' या 'टच' भर की दूरी पर होती है। उसका एक 'टच' उसे 'अनटच' से वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बना देने की ताकत रखता है। अतः ऐसे तकनीक और मीडिया के युग में लगभग सभी को निरंतर अपडेट बने रहने की आवश्यकता होती है। हमारा साहित्य इस मामले में सांस्कृतिक बोध से तो सम्पन्न होता है लेकिन नवीन वैचारिकी उसे भी सवालों के कटघरे में खड़ा करती है।

पस्त होते समाज को टॉनिक देने का कार्य साहित्य करता रहा है। साहित्य के अनेक उद्देश्यों में से एक यह भी है। लेकिन अस्मितामूलक विमर्श ने साहित्य को नई पहचान, नए तेवर, नए भाव, नया शिल्प और नवोन्मेषी चेतना से भरपूर साहित्यकारों की पूरी श्रृंखला का दर्शन कराया है। वस्तुतः कोई भी जन समुदाय जब सांस्कृतिक माध्यमों से अपनी अस्मिता खोजता है तब साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। जनपदीय सांस्कृतिक अस्मिता, आदिवासी, दलित, स्त्री, जाति एवं सत्ता आधारित अस्मिता की परंपरा वर्तमान में ज्यादा प्रासंगिक नजर आती है। इन सब विमर्शों की साहित्यिक प्रदेयता भी अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में मौजूद है। इनमें से साहित्य में दलित अस्मिता एवं विमर्श विशेष रूप से उल्लेखनीय है। व्यापक स्तर पर देखा जाए तो उक्त लिखित सभी अस्मिताएँ दलित प्रश्नों के साथ खड़ी नजर आती हैं। तमाम अंतर्विरोधों को दरकिनार करते हुए हम कह सकते हैं कि दलित विमर्श अपने आप में पहचान है। वर्तमान हिंदी साहित्य में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। मैं तो कहूंगा कि भारतीय साहित्य और विदेशी साहित्य में भी (उदाहरणस्वरूप तमिल, तेलुगू दलित आंदोलन और ब्लैक लिटरेचर) उसकी धमक मौजूद है। दलित साहित्य के पैरोकारों ने उसका अलग समाजशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, भाषाशास्त्र विकसित कर दिया है, जो आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेगी।

वैचारिकता के संप्रेषण के लिए अनुभव की सघनता आवश्यक है। अनुभव से विचार का गहरा संबंध होता है। यहाँ सवाल किया जा सकता है कि अनुभव और विचार भिन्न–भिन्न हैं और अनुभव को विचार की संज्ञा नहीं दी जा सकती है लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि किसी भी विचार को अनुभव ही प्रमाणित करता है। हमारा भारतीय साहित्य इसका उदाहरण है। दलित साहित्य में तो अनुभव और विचार का समीकरण रचना को प्रौढ़ बनाता है। अनुभव उसमें जीवंतता प्रदान करते हैं। उसे यथार्थ के नजदीक ले जाते हैं। अतः दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी वर्तमान समय में ज्यादा प्रासंगिक, सटीक, जनोपयोगी और उज्ज्वल चेतनामयी भविष्य की सूचक मानी जा सकती है। स्व अनुभव और अंबेडकरवादी वैचारिकी मिलकर साहित्य को नया आयाम प्रदान कर रहे हैं। भाषा की संश्लिष्टता उसे मर्मस्पर्शी बनाने में योगदान कर रही है। अब तो हमने स्वयं की भाषा और प्रतिमानों की भी भूमिका का चयन कर लिया है। अतः जनशक्ति से संपन्न लोकधर्मी, भ्रांतिधर्मी साहित्य के रूप में दलित साहित्य को देखा जाए तो वह ज्यादा सार्थक हो सकता है। साहित्य समाज की साधना है तो उसका समाज साहित्य की कसौटी। साहित्य में किसी समुदाय या वर्ग के काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवनानुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। साहित्य सामाजिक परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति भी है। वह सभी प्रकार की चेतना के निर्माण एवं विकास में भी सहायक है। साहित्य समाज से ही भाव संचयन, संग्रह का कार्य करता है। अतः दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं। दलित समाज और साहित्य भी इसी तरह के सामाजिक सरोकारों से उत्पन्न एवं जीवंत भावधारा है। इसमें समय, समाज, संस्कृति और दर्शन की समस्त चिंतन अवधारणाएँ एक साथ प्रवाहित है। यथास्थितिवाद के विरोध में खड़ा दलित साहित्य एक रचनात्मक आंदोलन भी है जिसकी अपनी एक राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय पहचान है।

दलित साहित्य की मुख्य चिंता हाशियाकृत समाज है। इसलिए इसके तेवर और अंदाज दूसरे से भिन्न हैं। इसमें विद्रोही अनुभव, उत्पीड़न का अंत और सामाजिक समता की कामना है। अतः इसके तेवर नए हैं। इसके वैचारिकी में भी यह बात दृष्टिगत होती है। निजीकरण,

उदारवाद, संचार क्रांति के वर्तमान दौर में दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी का प्रस्तुतीकरण नवीनीकृत रूप में हो रहा है। उपयुक्त बिंदुओं के अलावा स्वास्थ्य, शिक्षा, बीमा, फिल्म एवं मनोरंजन के दूसरे साधन, शिल्प एवं अन्य कलाएँ, पत्रकारिता, व्यापार, विदेश, सांस्कृतिक कलात्मकता, आलोचना, राजनीतिक मुद्दों आदि अन्यान्य विषयों पर भी वैचारिकी नए टूल्स के साथ उपस्थित है। दलित साहित्य के बरक्स इन सभी कलागत क्षेत्रों में भी हमने पहचान बना ली है, जैसे कि दलित पत्रकारिता एवं मीडिया। दलित पत्रकारिता का सही अर्थ बताते हुए कंवल भारती लिखते हैं– "दलित साहित्य की तरह दलित पत्रकारिता को भी अक्सर गलत अर्थ में समझा जाता है। दलित पत्रकारिता को 'दलित का दलित पर लेखन' माना जाता है, जो गलत है। वास्तव में दलित पत्रकारिता का अर्थ है, देश की समस्याओं पर राजनीति, समाज और जनतंत्र पर वह लेखन या चिंतन, जो निचले वर्ग से आया है।"[1] आदरणीय भारती जी का उक्त कथन दलित वैचारिकी की नवीन राहों का संकेतक भी है। दलित से इतर जो कुछ लिखा जाता है, आमतौर पर उसे ही मुख्यधारा का मान लिया जाता है। इस तरह की बातें समतासूचक नहीं है और लोकतंत्र के लिए बाधक भी हैं। अतः जो बातें हमें उद्वेलित करती हैं, परेशान करती हैं, मर्म पर चोट करती हैं, हमें पूरी बेबाकी और ईमानदारी से उस पर बात करनी चाहिए। रोहित वेमुला, नाट इज माय नेम,, सरकार की अन्य अलोक कल्याणकारी योजनाओं, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, महिला सशक्तिकरण, बजट, अल्पसंख्यक वर्गों की तकलीफों आदि पर हमारा रुख स्पष्ट हुआ है। इन सब में हमारी सहमति–असहमति को देखकर दलित वैचारिकी की श्रेष्ठता का पता चलता है। हमारी टिप्पणियों से पता लगने लगा है कि गंभीर विमर्श क्या है। हमारी रचनात्मक सृजनात्मक और आंदोलन धर्मिता निरंतर व वर्धित है और अब हमारा मत उपेक्षित न होकर ज्यादा सार्थक हो रहा है। हमारी दृढ़ता इसके मूल में है।

आधुनिक दलित समाज संघर्षमयी चेतना से संपृक्त है। इसके पीछे दलित साहित्य की लंबी एवं सशक्त रचना श्रृंखला कारण के रूप में विद्यमान है। प्रारंभ से ही अनेक रचनाकार, संपादक, प्रकाशक, राजनेता, समाज सुधारक, वैचारिक प्रबुद्ध मानस इसके संवर्धन का हिस्सा बने हैं। सामाजिक विषमता के खिलाफ इनकी सम्मिलित आवाज बुलंद होकर परंपरा को तोड़ते हुए नवीन संदर्भों को उजागर कर रही है। वर्तमान समय के दलित साहित्य का प्रखर रूप इनकी मेहनत और क्रियाशीलता का ही परिणाम है। अतः हमें अपने इतिहास को विस्मृत, खंडित और विवादग्रस्त होने से बचाना चाहिए। सदियों से चली आ रही आर्य परंपरा के शोषित रूप को भूलाकर हम परस्पर विवादों में उलझा दिए जाते हैं। हमें इससे बचना चाहिए और समेकित रूप से समाज में व्याप्त विकृतियों को सामने लाने का कार्य करना चाहिए। हमें दलित समुदाय को और बेहतर, प्रबुद्ध और नैतिक बनाने के लिए मिलकर वैज्ञानिक दिशा में आगे बढ़ना होगा। इसके लिए अगर हमें विरोधी से निर्माण और परिष्कार के उपयोगी सूत्र हासिल करने पड़े तो भी हमें स्वीकार्य होना चाहिए। हम एक ऐसे समाज के विकास में सहभागी बने जिसमें तकनीकी का विकास चरम पर हो, मनुष्य का सहज बोध सौंदर्य और गहन इंद्रियानुभूति भी शिखर पर हो। अपने संघर्षों, दुःखों, आपत्तियों, अत्याचारों से मुकाबला कर उन्हें पस्त करते हुए कला, साहित्य, संगीत, वैचारिकी और सौंदर्य की उच्चतम उपलब्धियों को हासिल कर सकें। हमारा भविष्य लक्ष्यहीन न हो। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सूचना तंत्र की असीमित संभावनाओं के द्वार पर हम भी साथ खड़े हों। इन सबमें हमारा मार्गदर्शन दलित साहित्य अपनी पुरजोर ताकत से करें। और वैचारिकी उसका सहयोग करे तो स्वप्न और यथार्थ का फासला खत्म हो सकता है। हिंदी पत्रकारिता की इस कमी की ओर संकेत करते हुए प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन' लिखते हैं– "वर्णभेद के प्रश्न पर हिंदी पत्रकारिता की भूमिका तो जगजाहिर हो ही चुकी है, अब क्या व्यवहार में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसरों की समानता और इंसानी–बंधुता की बातें कोरी लफ्फाजी नहीं है? अन्यथा दलितों के लिए उसकी मूर्त व्यवहारिकता क्या है?"[2] भारतीय मीडिया का जातिवादी स्वरूप हमारे सामने नग्नरूप में आता है। सोशल मीडिया ने जरूर इसमें सेंध लगाई है। हमारी अनेक समस्याओं, आशा–आकांक्षाओं के विस्तृत संसार को सोशल मीडिया ने जगह दी है।

स्वतंत्रता के बाद उपलब्ध आरक्षण की ताकत शैक्षिक–अवसरों, जाति आधारित राजनीतिक व्यवस्था और भूमंडलीकरण ने हमारे मध्य भी नए–नए अभिजन वर्ग को उभारने का मौका दिया है। इन अभिजनों को निजी स्वार्थ की अपेक्षा हमारे दोस्त, चिंतक और मार्गदर्शक बन कर रहना चाहिए। कई बार गैर–दलित अपने चिंतन और जाति–पद का दुरुपयोग हमारे खिलाफ करते हैं। ऐसे अभिजन उनका मोहरा बन जाते हैं। गैर–दलितों का मानस बदले बिना संपर्क समाज की स्थापना मुश्किल है। समाजशास्त्रीय धीरूभाई सेठ इस प्रश्न पर गौर करते हुए लिखते हैं– "जातिवादी विरोध और प्रगतिशीलता का दावा करने वाले गैर–दलित आज भी दलित समस्या को कमोबेश पुराने परिप्रेक्ष्य में रखकर ही पेश कर रहे हैं। इसके पीछे एक जाना बुझा रवैया है जो कथित आधुनिक, वैज्ञानिक व निरपेक्ष दृष्टि की आड़ में दलितों की समाज में सांस्कृतिक भागीदारी रोक देता है।"[3] सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी पर भी इनकी चुप्पी संदेह के घेरे में है। जब तक हमारे मध्य रागात्मक संवाद, तदात्म्य, सत्ता व वर्चस्व के आवश्यक प्रश्न और समुचित हिस्सेदारी पर बात नहीं होगी, हमें भी संभल कर चलना होगा। आवास, भोजन, शिक्षा तथा रोजगार से संबंधित समस्याओं पर वैचारिकी भी चिंतन करें। हमारे अधूरे स्वप्नों और उज्ज्ज्वल भविष्य के लिए वैचारिकी को बुलंद हौसलों के साथ आगे आकर हम सबका प्रतिनिधित्व करना होगा। साहित्य, बाजार, तंत्र के साथ–साथ हम सब भी उचित मार्गदर्शन के इंतजार में हैं। कला, संगीत, संस्कृति की त्रयी भी वैचारिकी के स्पर्श हेतु प्रतीक्षारत है।

स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध वैचारिक की युद्ध के तौर पर अपनी पहचान बना चुका दलित साहित्य आज मुख्य विषय बन चुका है। दलित वर्ग को उसके शोषण का अहसास और सामाजिक समानता की प्राप्ति हेतु संघर्षरत रहना जरूरी है। कलम को हथियार बनाकर

अनेक लेखक आज पथ प्रदर्शक की भूमिका में है। दलित वर्ग से इतर अन्य लेखक भी इसमें अपनी लोकतांत्रिक उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं। दलितों की वेदना, व्यथा, पीड़ा, उपेक्षा, अपमान आदि में उनके विचार उपयोगी हैं। साहित्य के धरातल पर उनके संवेदनात्मक क्रिया–व्यापारों का हमें समर्थन करना चाहिए। साहित्य के भविष्य पर सवाल का जवाब देते हुए कथाकार उदय प्रकाश कहते हैं– "दलितों को अतीतजीवी नहीं भविष्यदर्शी होना चाहिए। सवर्णवादी सांस्कृतिककरण का शिकार होकर, सवर्णों द्वारा ही महिमामंडित होने और पुरस्कृत होने से, दलित लेखकों–बौद्धिकों को बचना होगा। वरना हमारे पास मायावती तो होंगी, अक्का महादेवी नहीं, रामविलास पासवान तो होंगे, कबीर नहीं।"[4] उदय प्रकाश जी का उक्त कथन प्रासंगिक है। हमारे कई साहित्यकार जिन मुद्दों, विचारों और धाराओं का विरोध करते हैं, अवसर मिलते ही ऐसी सरकारों से पुरस्कृत होते देर नहीं लगाते। यहाँ सम्मान वापसी जैसा आंदोलन भी दिखाई नहीं देता। योजनाबद्ध लेखन, अवसरवादी अनुकूलता में परिवर्तित होता चला जाता है। लोकतंत्र के नाम पर हम कुछ भी, किसी से भी स्वीकार करने को तैयार रहते हैं। जब सवाल उठते हैं तो पुरस्कार समानता की बात करने लगते हैं। हमें इस तरह की प्रवृति से बचना चाहिए। दलित साहित्य की वैचारिकी की धार तथाकथित सम्मानों से कुंद नहीं होनी चाहिए। ऐसा हमारा अनथक प्रयास होगा।

दलित साहित्य का अपना सौंदर्यशास्त्र है। वह निरंतर विकासशील होता है। वैचारिकी का योग संकट अवश्य है लेकिन निरंतर बढ़ती दलित साहित्य की प्रसिद्धि थोड़ा आश्वस्त करती है। हमें आलोचकों की उदासीनता एवं कटु आलोचना से व्यथित नहीं होना चाहिए। हिंदी आलोचना आज स्वयं गुटबाजी का शिकार है। हिंदी साहित्य के वर्तमान परिदृश्य में आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएँगे, जहाँ गुटबाजी के कोष्ठ, निकृष्ट, निम्न, उच्च, नवोन्मेषी, नवोदित, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय आदि अनेक उपाधियों से साहित्य का कल्याण किया है। तथाकथित आलोचना के अभाव में अनेक लेखक निराशा, अवसाद के शिकार हो जाते हैं। अतः इस तरह के आलोचक, आलोचना के मोह को त्यागकर नकारवादी मानसिकता के खिलाफ हमारी वैचारिकी को खड़ा होना होगा। सवर्णवादी आलोचना एक दिन स्वयं हमारी वैचारिकी का सम्मान करने को मजबूर हो जाएगी। जरूरत बस श्रेष्ठ लेखन की है। अनुभूति की प्रमाणिकता जैसे महत्वपूर्ण विशिष्टता हमारी वैचारिकी को उनसे ज्यादा आकर्षक बनाती है। हमारी यह प्रमाणिकता व्यक्तिगत न होकर सामूहिक और सामुदायिक है। अतः हम व्यष्टि की बात करके भी समष्टि के अनुभव–संदर्भों को ही व्यक्त कर रहे होते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. जयप्रकाश कर्दम के अनुसार "लोकोपयोगी होना किसी भी साहित्य की अनिवार्य शर्त है। दलित साहित्य और उसके वैचारिकी इस शर्त पर खरी उतरती भी है।"

दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी ने जनतांत्रिकता और उसके नवीन मूल्यों का विकास और विस्तार किया है। शिल्प स्तर पर भी यह परिवर्तन दिखाई देता है। न जाने कितने नवीन शब्दों, अर्थ, ध्वनियाँ, प्रतीक और कलागत उपमान दलित साहित्य की रचनात्मक देन हैं। वैचारिकी को भी परंपरागत प्रतिमानों का मोह त्यागकर अपना स्वयं का तंत्र विकसित करना होगा ताकि भाषायी स्तर पर भी साहित्य संवेदना और साहित्य भाषा का अनुभूतिपरक रूप सामने आ सके। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र के बरक्स हमें उसके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र और समाजशास्त्र के विभेद को भुलाकर सौंदर्यशास्त्रीय प्रभावों या समाजशास्त्रीय स्वरूप की व्याख्या भी जरूरी है। प्रसन्नता की बात है कि दोनों ही स्तर पर दलित वैचारिकी सजग है और इन विषयों पर महत्वपूर्ण पुस्तकें सामने आई भी हैं। हालाँकि मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के मध्य सामानांतर विकास की बात होती आई है, लेकिन दलित वैचारिकी को विचारधारात्मक स्तर पर इसे स्वतंत्र मानना चाहिए। उसका दर्शन और विचार वर्णवादी व्यवस्था के प्रतीकार के रूप में होता है। दलित सौंदर्यशास्त्र सामाजिक–सांस्कृतिक आलोचना के केंद्र में रहता है। दलित साहित्य यातना से उत्पन्न एक आवाज का प्रतीक है। अतः इसके समाजशास्त्रीय और सौंदर्यशास्त्रीय पैमाने अलग एवं स्वतंत्र होंगे।

स्पष्ट है कि आज दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी ने लंबा रास्ता तय कर लिया है। अपने समक्ष उठने वाली चुनौतियों, समस्याओं से निरंतर वह संघर्षरत भी है। वर्तमान में भी अनेक बाधाएँ उसके मार्ग में हैं। हिंदुत्व, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद, नौकरीपेशा वर्ग की उपेक्षा, मध्यवर्ग का तनाव, भ्रष्ट पाखंडी राजनीति, जातियों का आपसी संघर्ष, गुटबाजी, उदासीनता, सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव, उत्तर आधुनिकता की जटिलताएं, पर्यावरण, भाषायी असमानता, लिंगभेद, अंतर्द्वंद, संत्रास, दलित स्त्री का संघर्ष व उसकी मुक्ति, दलित बाल–साहित्य का अभाव, मीडिया में उसकी उपस्थिति आदि स्थितियों का वर्णन शेष है। अपनी संभावनापूर्ण रचनात्मकता को साकार करके ही दलित साहित्य इन सब से जूझ सकता है। दलित साहित्य, वैचारिकी की पहचान सम्पूर्ण मानवीय अनुभव की दास्तान में निहित होनी चाहिए। मानवीयता, समानता और सम्यक भावों की प्राप्ति के आवश्यक अवयव दलित साहित्य में अन्तर्युक्त हैं, जरूरत उन्हें बस जागृत करने की है।

संदर्भ ग्रंथ–

1– मीडिया और दलित (सं. श्यौराज सिंह 'बेचैन', एस. एस. गौतम), गौतम बुक सेंटर, 2014, पृ. सं.– 161
2– समाज, राजनीति और जनतंत्र, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृ. सं.– 8
3– आधुनिकता के आईने में दलित, सं. अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. सं.– 39
4– हंस, अगस्त, 2004, (सं.)– राजेन्द्र यादव, दरियागंज, दिल्ली, पृ. सं.– 219

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

प्रौढ़ों के सीखने के सिद्धांत

डॉ. शिखा कपूर

पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती है। इंसान बच्चा हो या प्रौढ़ सीखने सिखाने की प्रबल इच्छा उसमें सदा विद्यमान रहती है। लेकिन पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया में अध्यापक, अनुदेशक और प्रशिक्षक, बच्चों और प्रौढ़ों के सीखने के तरीकों के मूलतः अंतर को जानते नहीं हैं और प्रौढ़ों को भी बच्चों की तरह पढ़ाने पर जोर देते रहते हैं। कई बार हमें अपने आस–पास निरक्षर प्रौढ़ों को पढ़ाने या उन्हें कोई प्रशिक्षण देने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है। 'स्किल इंडिया' के दौर में स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालयों में निरक्षर एवं साक्षर प्रौढ़ों के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह जरूरी है कि अध्यापक, अनुदेशक और प्रशिक्षक, बच्चों और प्रौढ़ों के अंतर को भली–भांति समझकर ही पढ़ने–लिखने या प्रशिक्षण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएँ। जिस प्रकार बच्चों की पढ़ाई–लिखाई को सफल बनाने हेतु उनकी मानसिकता व सीखने के सिद्धांतों को जानना आवश्यक होता है, उसी प्रकार प्रौढ़ों की पढ़ाई–लिखाई या उनके प्रशिक्षण के परिपेक्ष्य में प्रौढ़ों के सीखने के सिद्धांतों को समझना आवश्यक होता है।

प्रौढ़ों के अधिगम के सिद्धांत पढ़े–लिखे एवं निरक्षर प्रौढ़ों दोनों पर ही लागू होते हैं। इन सिद्धांतों को प्रौढ़ों के साथ किसी भी प्रकार की साक्षरता, शिक्षा, प्रशिक्षण या चर्चा जैसी गतिविधियों के दौरान अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। प्रौढ़ों के अधिगम संबंधी कुछ बातें निम्नानुसार हैं:–

- अनुभव आधारितः प्रौढ़ों के पास जीवन से अर्जित अनुभव का भंडार होता है। निरक्षर प्रौढ़ों के संदर्भ में यही अनुभव उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान का असीम स्रोत होता है। केवल वे लिखना–पढ़ना ही नहीं जानते हैं। अनुदेशकों और प्रशिक्षकों को अनुभवों पर आधारित पढ़ने–लिखने व प्रशिक्षण गतिविधियों का संचालन करना चाहिए।

- शोध द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बच्चे जहाँ परस्पर क्रिया या स्वयं खोजकर सीखते हैं वहीं प्रौढ़ अपने अनुभवों के आधार पर ही सीखते हैं। इसलिए सीखने की प्रक्रिया सदैव उनके स्वयं के अनुभव से ही शुरू होनी चाहिए।

- उदाहरण देकर ऐसा हो सकता है कि हमारे पास प्रशिक्षण ले रही निरक्षर प्रौढ़ महिला ने साहूकार से उधार लिया हो। केवल 1000 रुपये लिए लेकिन अशिक्षित होने के चलते उसने अँगूठा लगाया 10,000 रुपए के कागजों पर। तो हम इस अनुभव को लेकर उस महिला को यह समझा सकते हैं कि यदि वह पढ़ाई–लिखाई ठीक प्रकार से कर पाती तो उसे कोई यूँ धोखा न दे पाता।

- जानी से अनजानी की ओरः अधिगम के सिद्धांतों में अनुभव आधारित सीख से जुड़ा हुआ एक सिद्धांत है जानी हुई चीज की मदद से अनजानी चीजें सीखाना। यह सिद्धांत प्रौढ़ों और बच्चों दोनों को ही पढ़ाते समय प्रयोग किया जाता है।

- इस सिद्धांत को हमें अपने पढ़ाने के तरीके में सक्रिय रूप से इस्तेमाल करना चाहिए। जैसे यदि अक्षर "अ" पढ़ाना है तो निरक्षर प्रौढ़ शिक्षार्थियों को "अ" से "अनार" न पढ़ाएँ। ऐसा करने पर यह अर्थ होगा कि सीखने वाले "अ" जानते हैं, और हम उन्हें 'अ' से 'अनार' पढ़ा रहे हैं। लेकिन वास्तव में वह अनार पहचानते हैं। इसलिए "अनार" से "अ" पढ़ाइए।

- सरल से कठिन की ओरः हम जब भी कोई नई चीज सीखना आरंभ करते हैं, तब यदि वह चीज सरल होगी, तब हमें उसे सीखने में सफलता भी अवश्य प्राप्त होगी। सीखने सिखाने में मिली सफलता न केवल शिक्षार्थियों का हौसला एवं उत्साह बढ़ाती है, उसके साथ–साथ सीखने की प्रक्रिया भी निरंतर जारी रहती है। प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिए यह खास तौर पर आवश्यक हो जाता है कि शुरू–शुरू में पढ़ाई के अनुभव सरल और सफलता से जुड़े हुए हों और धीरे–धीरे ही उन्हें कठिन एवं अनजानी चीजें सिखाई जाएँ।

- स्वयं की अवधारणा को मजबूत करनाः स्वयं की अवधारणा का अर्थ होता है अपने स्वयं के प्रति आस्था एवं विश्वास को मजबूत रखना। निरक्षर प्रौढ़ों के जीवन में हुए शोषण, उनके आस–पास की निराशाजनक परिस्थितियों के कारण उनका आत्मविश्वास व स्वयं की अवधारणा कमजोर होती जाती है। इन सब से वे अपने आपको असमर्थ, कमजोर, अनुभवहीन, अज्ञानी, कुछ न जानने वाले, सत्ताविहीन व्यक्ति आँकने लग जाते हैं। अगर प्रौढ़ अपने स्वयं की अवधारणा को मजबूत एवं आशावान बना लेता है, तो वह सुगमता से सीखने की प्रक्रिया में अपने आप को जोड़ सकता है। अगर वह यह विश्वास करने लगे कि "मैं भी सीख सकता हूँ", "मैं भी कुछ कर सकता हूँ" उनकी स्वयं की अवधारणा मजबूत होती है और यह भी देखा गया है कि वे सुगमता से सीखने लगते हैं। हमें अपने शिक्षार्थियों को सरल, रुचिकर ढंग से पढ़ाना चाहिए जिससे उनके आत्मविश्वास को बल मिले और उनकी स्वयं की अवधारणा मजबूत हो।

- भावनाएँः प्रौढ़ों की सीखने की प्रक्रिया में भावनाओं का एक प्रमुख स्थान है। वे जो सीखते हैं, अनुभव करते हैं उसे मजबूत भी करते हैं। डर, निराशा, चिंता की भावनाओं के रहते उनका

सीखने की प्रक्रिया से जुड़ पाना मुश्किल होता है। यदि वे यह मान लें कि "पढ़ाई मेरे बस की बात नहीं है," या "पढ़ाई तो बहुत मुश्किल काम है," या "मेरे लिए इस उम्र में पढ़ना संभव नहीं है," तो ऐसी स्थिति में उनके लिए पढ़ना–लिखना और सीखना मुश्किल काम है। हमें ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करनी चाहिए जिससे आशा, सुख, खुशी पैदा करने वाली भावनाएँ प्रौढ़ों के मन में उत्पन्न हों ताकि वे सीखने की प्रक्रिया से जुड़े रहें और उनके सीखने की भी गति बढ़े।

- उपयोगिताः प्रौढ़ वही सीखते हैं जिसका उपयोग उनकी वास्तविक जिन्दगी में होता है, इसलिए विषय, समय, पढ़ाई का स्थान, पढ़ाने का तरीका, प्रौढ़ों के अनुरूप और आवश्यकतानुसार ही होना चाहिए। जो वे सीख रहे हैं उसका उपयोग उनके जीवन में कहाँ, कब और कैसे होगा, इसे वह ध्यान से जाँचते रहते हैं। अतः यह आवश्यक होता है कि उन्हें सीखने के ऐसे अवसर दिए जाएँ जो उनकी आवश्यकता/समस्या पर आधारित हो, जिनका उपयोग वे निजी जीवन में कर सकें।

- व्यवहार : निरक्षर व्यक्ति पढ़े–लिखों के हाथों अक्सर तिरस्कृत और अपमानित होते रहते हैं। इसलिए जब प्रौढ़ शिक्षार्थी हमारे पास पढ़ना–लिखना सीखने आते हैं तब उनके प्रति हमारा व्यवहार सीखने–सिखाने की सफल प्रक्रिया में निर्णायक कारक होता है।

- यदि हमारा शिक्षार्थी हमारी उम्र का है या हमसे उम्र में छोटा है तो भी हमें उससे बराबरी और प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। यदि वे हमसे उम्र में बड़े हैं तो उनके प्रति हमारा व्यवहार आदर और इज्जत का होना चाहिए।

- सहभागिताः प्रौढ़ों के अधिगम के सिद्धांतों में सहभागिता एक प्रमुख मुद्दा है। बच्चों को पढ़ाते समय अध्यापक और शिष्य का संबंध असमानता का होता है। इस संबंध में अध्यापक जानकार, ज्ञानी व्यक्ति होता है जो शिष्य को सब कुछ समझाता, बताता और सिखाता है। लेकिन निरक्षर प्रौढ़ों के संदर्भ में हम यह मानते हैं कि वे अनुभवी, ज्ञानी व्यक्ति हैं, जो केवल लिखना–पढ़ना नहीं जानते। इसीलिए उनके साथ काम करते समय, उनकी बराबर की सहभागिता या हिस्सेदारी होनी आवश्यक होती है। हम उनके अनुभवों से बहुत कुछ जान सकते हैं और सीख सकते हैं। इसलिए हमें परस्पर मिलकर, उनकी राय जानकार और उनकी आवश्यकताओं के आधार पर ही साक्षरता संबंधित गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए।

- प्रशंसाः प्रौढ़ शिक्षार्थियों द्वारा किए गए प्रयासों की प्रशंसा करके उनका उत्साह एवं आत्मविश्वास बढ़ाया जा सकता है। इससे वे और अधिक सीखने के इच्छुक हो सकेंगे और पढ़ाई–लिखाई एवं सीखना उन्हें कठिन कार्य नहीं लगेगा।

- विचार अभिव्यक्तिः हर व्यक्ति अपनी बात दूसरों को बताना चाहता है। इसके साथ वह यह भी चाहता है कि उसकी बात अन्य लोग ध्यान से सुनें। निरक्षर प्रौढ़ भी अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाना चाहते हैं लेकिन पढ़े–लिखे व्यक्तियों के सामने या समूह में बोलने से वह कतराते हैं और झिझक महसूस करते हैं। उन्हें लगता है कि कहीं कोई हँस न दे या उनके मुँह से कोई गलत बात न निकल जाए। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन्हें उनके विचारों को व्यक्त करने के लिए उत्साहित करें और उनके विचारों का सम्मान करें। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा और वे सीखने की प्रक्रिया से पूरी तरह जुड़ सकेंगें।

- क्षमताओं के प्रदर्शन का अवसरः हर व्यक्ति में कुछ न कुछ रचनात्मक व सृजनात्मक क्षमताएँ होती हैं। निरक्षर प्रौढ़ों में ये क्षमताएँ भरपूर होती हैं, जैसे सिलाई–कढ़ाई, बुनाई, चित्रकारी, गाना–बजाना, नाचना, कविता–कहानी सुनाना इत्यादि। लेकिन वे अपनी प्रतिभा को दूसरे के सामने प्रस्तुत करने में झिझक महसूस करते हैं। यदि हम अपने संपर्क में आने वाले प्रौढ़ की प्रतिभाओं व क्षमताओं का सही आकलन करने के पश्चात उसे प्रोत्साहित करें व सही दिशा दें तो यह उसके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इससे सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में विविधता आएगी और नीरसता से भी बचा जा सकता है।

- स्थानीयताः प्रौढ़ों के साथ साक्षरता संबंधित गतिविधियों का आयोजन करते समय यह आवश्यक होता है कि वह उनकी संस्कृति से जुड़ी हों। जहाँ तक हो सके हमें स्थानीय उदाहरण लेकर ही चर्चा और विचार–विमर्श करना चाहिए ताकि वे उसमें पूरी तरह शामिल हो सकें और उससे कटे हुए न महसूस करें।

- अंधविश्वासों के प्रति सजग करनाः निरक्षता की वजह से प्रौढ़ कई तरह की धारणाओं और अंधविश्वासों से ग्रस्त होते हैं। अपने निजी नुकसान के बावजूद भी वह इन कर्मकांडों और मान्यताओं से जुड़े रहते हैं।

शिक्षा के माध्यम से अनुदेशकों और प्रशिक्षकों को साक्षरता गतिविधियों के साथ–साथ प्रौढ़ शिक्षार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी पैदा करना होता है। लेकिन यह सब करते समय उन्हें यह ध्यान रखना होगा कि जो शिक्षण–प्रशिक्षण के तरीके वे इस्तेमाल करें वे संवेदनशील हों और बिना उनकी भावनाओं को ठेस पहुचाएँ उन्हें विभिन्न मुद्दों पर सजग एवं संपन्न करें और उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करें। यदि उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है तो इससे सीखने की प्रक्रिया वहीं रुक जाएगी क्योंकि प्रौढ़ जो कुछ भी सीखते हैं वे उसे महसूस करके ही सीखते हैं।

सहायक प्राध्यापक
प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा विस्तार विभाग

भूमंडलीकरण का सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव

कन्हैया लाल

आधुनिक विश्व का इतिहास उपनिवेशवादी शक्तियों की गौरव–गाथा का इतिहास रहा है। इसकी शुरुआत यूरोप में ज्ञानोदय, औद्योगिक क्रांति, पूंजीवाद तथा राष्ट्र–राज्य के उदय से मानी जा सकती है। 15वीं सदी के अंतिम दशक में यूरोप के भू–वैज्ञानिकों ने अपने व्यापार के प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न देशों के समुद्री मार्गों को खोज निकाला जिनमें अमेरिका के खोजकर्ता क्रिस्टोफर कोलंबस और भारत के खोजकर्ता वास्को–डी–गामा का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। जाहिर–सी बात है उनकी इस खोज के पीछे साम्राज्यवादी सोच काम कर रही थी। इससे पहले यूरोप के व्यापारी बहुत–सी वस्तुओं के आयात के लिए अरब और तुर्क व्यापारियों पर निर्भर थे। अरब के व्यापारी "पश्चिमी यूरोप के नए राष्ट्रों खासकर स्पेन और पुर्तगाल को अपने व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापारों में भागीदार नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए पश्चिम यूरोप के देश और व्यापारी भारत और इंडोनेशिया के इस्पाइस आइलैंड के लिए नए और अधिक सुरक्षित मार्गों की तलाश में रहते थे।"[1]

वास्को–डी–गामा द्वारा भारत के समुद्री मार्ग की खोज के पश्चात् भारत में यूरोप के व्यापारियों के आगमन का सिलसिला प्रारंभ हो गया। 16वीं सदी का भारत पुर्तगालियों के एकाधिकार में रहा। इसी दौरान यूरोप के अन्य देशों इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि ने व्यापार पर पुर्तगालियों के एकाधिकार के खिलाफ संघर्ष किया और व्यापार में अपनी जगह बनाई। 17वीं सदी में भारत में पुर्तगालियों की जगह अंग्रेजों ने ले ली और स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारत ब्रिटेन का उपनिवेश बना रहा।

ब्रिटिश शासन–काल के दौरान ही भारत में औद्योगीकरण की शुरुआत हुई। "सन 1850 के बाद ब्रिटेन की बहुत बड़ी पूँजी रेलवे, भारत सरकार को ऋण देने तथा अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर चाय बागानों, कोयले की खानों, चटकलों, जहाजरानी, व्यापार और बैंकों में लगाई गई।"[2] किन्तु यह पूरी तरह से ब्रिटिश औद्योगीकरण था। 19वीं सदी में ही भारत में आधुनिक विचारों का प्रचार–प्रसार आरंभ हुआ। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, एनी बेसेंट, विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, सैयद अहमद खान जैसे विचारकों ने समाज सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। कहा जा सकता है कि 19वीं सदी भारत में सामाजिक सुधारों की सदी थी। साथ ही इस सदी में यह भी महसूस किया जाने लगा कि जब तक भारतीय अर्थव्यवस्था अंग्रेजों के हाथ में है तब तक भारत का आर्थिक विकास नहीं हो पाएगा। अतः बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रवादी आन्दोलन करने की ठान ली। इस सन्दर्भ में प्रख्यात इतिहासकार विपिन चन्द्र लिखते हैं– "राष्ट्रीय आन्दोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व संभालने तथा उसे एक जनतांत्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया।"[3] इसके अतिरिक्त फ्रांसिसी क्रांति, जापान की रूस पर विजय, बोल्सेविक क्रांति जैसी घटनाओं ने स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रेरणादायी भूमिका निभाई। आखिरकार लम्बे संघर्ष के बाद सन 1947 में भारत को स्वतंत्रता हासिल हुई। स्वतंत्रता–प्राप्ति से ठीक पहले विश्व पटल पर एक महत्तवपूर्ण घटना घटी, जिसे द्वितीय विश्व–युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस विश्व–युद्ध के बाद ब्रिटेन को काफी आर्थिक क्षति पहुंची तथा दो महाशक्तियों के रूप में सोवियत संघ और अमेरिका का उदय हुआ। समय के साथ इन दोनों महाशक्तियों का आपसी टकराव बढ़ता चला गया। विचारधारा के स्तर पर सोवियत संघ साम्यवादी विचारों का समर्थक था, जबकि अमेरिका पूंजीवाद का। अमेरिका के ब्रेटनवुड्स में सन 1944 ई. में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष एवं विश्व बैंक जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य विश्व बंधुत्त्व की भावना को बढ़ावा देना बताया गया। असल में ये सस्थाएँ पूंजीवादी विचार को विश्वव्यापी बनाने हेतु स्थापित की गईं। यह वह समय था जब ब्रिटिश पूंजीवाद का स्थान अमेरिका ने ले लिया था। 20वीं सदी के अंतिम दशक तक आते–आते सोवियत संघ का विघटन हो गया और अमेरिका ने पूरे विश्व पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। इसी दशक की शुरुआत में भारत में तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में उदारवादी नीतियों की शुरुआत हुई, जिन्हें आर्थिक–सुधार की नीतियाँ भी कहा जाता है। यहीं से स्वाधीन भारत में भूमंडलीकरण की नींव पड़ी।

यह दूसरी तरह का भूमंडलीकरण है। पहले भूमंडलीकरण में, जिसका अगुआ ब्रिटेन था उसने सैन्य शक्तियों और उपनिवेशों के माध्यम से अपने साम्राज्य का विस्तार किया। अब बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तकनीक और सूचना–प्रौद्योगिकी के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया जाने लगा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में 'राष्ट्र–राज्य' जैसे आधुनिक विचारों पर खतरा मंडरा रहा है। इसे कुछ विचारक उत्तर–आधुनिकता की शुरूआत भी मानने लगे हैं। प्रसिद्ध शिक्षाविद प्रो. सुधीश पचौरी इस सन्दर्भ में लिखते हैं– "आसमान में घूमती बहुराष्ट्रीय निगमों की सैटेलाइट और सूचना उद्योग, कम्प्यूटर देशों

की सीमाएँ लाँघे बिना सीधे व्यापार अथवा हस्तक्षेप कर सकते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों की पूँजी, देशों के नियंत्रण की पूँजी है।"[4] पचौरी जी के शब्दों में यही 'अतिकेंद्रिकता बरक्स विकेंद्रीयता' है। यहीं केंद्रवाद टूटते हैं और अनेक उपकेन्द्र खड़े हो जाते हैं क्योंकि देर–सवेर तकनीक सबको हस्तगत हो जाती है। वे उदाहरण देते हुए स्पष्ट करते हैं कि अमेरिका के रहते जापान या यूरोप का नए केंद्र के रूप में उठना तकनीक की इजारेदारी की अनेक–केंद्रीयता को संभव करता है। यहाँ से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जो तकनीकी दृष्टि से मजबूत होगा, उसी का वर्चस्व होगा।

यदि भारत के सन्दर्भ में भूमंडलीकरण की बात की जाए सबसे पहले हमें यह मानना पड़ेगा कि भारत द्वारा यह विचार मजबूरी में अपनाया गया। हमें यह भी देखना होगा कि यह विचार यहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप है या नहीं? क्या भारतीय समाज पूरी तरह आधुनिक हो चुका है? यदि नहीं, तो क्या आधुनिक हुए बिना ही उत्तर–आधुनिक हुआ जा सकता है? क्या भारत विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों को चुनौती दे सकेगा? वर्तमान भारतीय प्रधानमंत्री जिस 'कम, मेक इन इंडिया' की बात करते हैं उससे क्या हासिल किया जा सकेगा? ऐसे समय में गाँधी के स्वदेशी के विचार का क्या होगा? क्या बहुराष्ट्रीय निगम पक्के रोजगार की गारंटी दे सकेंगे? आखिर क्या मजबूरी है कि विदेशी कम्पनियाँ यहाँ आकर, यहीं के संसाधनों का उपयोग कर मोटी पूँजी कमा रही हैं और हम उनका मुकाबला करने में असफल हो रहे हैं? प्रश्न यह भी है कि हम क्यों उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में आते चले जा रहे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण कर रहे हों?

भारत के सन्दर्भ में आधुनिकता पर बात करते हुए इतिहासकार विपिन चन्द्र लिखते हैं– "मध्य और उच्च श्रेणी के कुछ खास वर्ग के भारतीयों ने पश्चिमी जीवन और संस्कृति के स्वस्थ, मानवतावादी और वैज्ञानिक तत्वों को सावधानीपूर्वक अपनाने के बजाय बिना परीक्षण किए ही उसका अन्धानुकरण किया। उन्होंने यूरोपीय तौर–तरीकों की बंदरों की तरह नकल की। उन्हें यह अहसास नहीं था कि आधुनिकता का प्रश्न सोचने–विचारने की दृष्टि और मूल्यों से जुड़ा हुआ है न कि बातचीत करने के तरीके, पोशाक या खाने की आदतों से। उन्होंने यह महसूस नहीं किया कि आधुनिक विचार और संस्कृति को भारतीय संस्कृति में सुगन्धित करके ही सबसे अच्छी तरह अपनाया जा सकता है।"[5] इनसे भी एक कदम आगे बढ़कर प्रो. सुधीश पचौरी आधुनिकता के पूरे विचार पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं, वे लिखते हैं– "एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीकी देशों ने यह बहुत बाद में जाना कि ज्ञानोदय एक नई गुलामी है, उन विचारधाराओं की गुलामी जो कहीं बाहर बनी है। ये तमाम विचारधाराएँ एक दमनात्मक अस्त्र के रूप में प्रकट होती हैं और जीवन को अनुकूलित करती हैं।"[6] इसीलिए उत्तर–आधुनिकता का विचार विचारधाराओं के खात्मे की बात करता है। इसी के साथ उत्तर आधुनिकता, आधुनिकता के अन्य प्रमुख घटकों जैसे इतिहास, राष्ट्र–राज्य आदि के खात्मे की भी बात करती है।

भूमंडलीकरण के मुख्य औजार सूचना तकनीक ने भारतीय समाज के दिशा निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके चलते छोटे–छोटे समूहों का उदय हुआ है, जो निरंतर अपनी आवाज उठा रहे हैं। हिंदी साहित्य में इन्हें 'विमर्श' के नाम से जाना जाता है। वैकल्पिक मीडिया(सोशल मीडिया) के माध्यम से आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी बात रख सकता है। आज देश के किसी भी कोने में बैठकर कोई भी व्यक्ति कैसी भी जानकारी हासिल कर सकता है। भूमंडलीकरण ने चीजों को सीमित एकाधिकार से निकालकर आम जन तक पहुँचाया है। अर्थात प्रत्येक तरह की सत्ता का विकेंद्रीकरण किया है। इसके अतिरिक्त भूमंडलीकरण ने समय व श्रम की बचत की है।

यदि समग्रता में देखा जाए जो भारत जैसे देशों में भूमंडलीकरण के फायदे कम, नुकसान ज्यादा हैं। सर्वप्रथम तो भारत अभी औद्योगिक दृष्टि से परिपक्व नहीं हुआ है, ऐसे में भूमंडलीकरण के चलते यहाँ विदेशी कंपनियों की संख्या में इजाफा हो रहा है। ये सभी कम्पनियाँ यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग कर मोटा मुनाफा कमाते हुए अपने साम्राज्य का विस्तार कर रही हैं। दूसरे, भारत अभी सूचना–तकनीक के मामले में भी काफी पिछड़ा हुआ है। ऐसे में भूमंडलीकरण के चलते भारत एक बार फिर से साम्राज्यवादी ताकतों के चंगुल में फँस चुका है। इसे नव–साम्राज्यवाद भी कहा जाता है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि भूमंडलीकरण के चलते भारत में रोजगारों का सृजन हुआ है। किन्तु एक हकीकत यह भी है कि इसके चलते भारत के लघु–कुटीर उद्योगों का खात्मा हो गया। भूमंडलीकरण के चलते विकसित हुई उपभोक्ता संस्कृति ने सभी प्रकार के नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर अधिक से अधिक उपभोग करने की सीख दी है। इसके साथ ही संयुक्त परिवारों का विघटन, पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल–वार्मिंग, अमीर–गरीब के बीच बढती खाई, दूषित होती राजनीति, वैश्विक आतंकवाद, निरंकुश धनतंत्र, बढ़ता भ्रष्टाचार आदि अनेक दुष्प्रभाव भी देखे जा सकते हैं।

भूमंडलीकृत होते भारत की इस तस्वीर को हिंदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामने लाया है। भूमंडलीकरण के चलते भारत में हुए संयुक्त परिवारों के विघटन को अलका सरावगी, काशीनाथ सिंह और रवींद्र वर्मा जैसे उपन्यासकारों ने अपने लेखन में पर्याप्त जगह दी है। एक ब्रेक के बाद उपन्यास के माध्यम से प्रसिद्ध लेखिका अलका सरावगी लिखती हैं– "इंडिया के बीस करोड़ घरों के अन्दर हिंदुस्तान लीवर कुछ–न–कुछ छोटा मोटा सामान जैसे कि तेल या साबुन लेकर घुसा हुआ है...अभी तो इंडिया में संयुक्त परिवार टूटकर न जाने कितने और करोड़ चौके चूल्हे बन जाएँगे।"[7] प्रसिद्ध उपन्यासकार काशीनाथ सिंह अपने उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में संयुक्त परिवारों के विघटन के पश्चात् पैदा हुए

एकाकीपन का वर्णन करते हुए लिखते हैं– "रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़ें। वे खेत और मकान नहीं हैं कि अपनी जगह ही न छोड़ें। लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा मौके भी आएँ जब सब एक साथ हों, आपस में हँसे, गाएँ, झगड़ें, हा–हा, हू–हू करें, खाएँ–पिएँ, घर का सन्नाटा टूटे। मगर आज कई साल हो रहे हैं और कोई नहीं है, कोई नहीं।"[8] कुछ इसी तरह का अनुभव रवींद्र वर्मा के 'निन्यानवे' उपन्यास में मास्टर रामदयाल को होता है जब उनके दिल्ली पहुँचने पर उनका बेटा किन्ने उनसे मिलने तक नहीं आता। वर्मा जी लिखते हैं– "रामदयाल को विश्वास हो गया कि बेटे के घर में माँ–बाप के लिए जगह नहीं है।"[9]

भूमंडलीकरण के चलते अस्तित्व में आई उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय समाज और संस्कृति को सर्वाधिक प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण पर शोध कर चुके राजनीति विज्ञान के प्रो. अमित कुमार सिंह लिखते हैं– "भूमंडलीकरण के चलते एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आया है, जिसकी दिलचस्पी केवल अपने दैनिक सुख तक सीमित है। संस्कृति के नाम पर उपभोक्तावाद की संस्कृति ही इनकी सर्वमान्य एवं सर्वस्वीकृत संस्कृति है। इस भारतीय मध्यवर्ग ने रहीम के सूत्र 'तैते पांव पसारिये जैती लंबी सौर' को दरकिनार करते हुए 'ऋणंकृत्वा घृतं पीवेत' जैसी उक्ति को जीवन का मूलमंत्र बना दिया है।"[10] इस उपभोक्तावादी संस्कृति को घर–घर पहुचाने का काम किया है–सूचना तकनीक और विज्ञापन ने। वर्तमान समय में सूचना तकनीक के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लेखिका अलका सरावगी लिखती हैं– "दुनिया की डोर अब इंडस्ट्रियल टेक्नोलॉजी के हाथ में नहीं। आज दुनिया चल रही है सूचना–तकनीक से यानी इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी से।"[11] वरिष्ठ पत्रकार प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' के अंतर्गत तकनीक के माध्यम से बिंदु यादव के मुन्नी मोबाइल बनने तक के सफर को रेखांकित किया है। अपने इस उपन्यास में उन्होंने यह भी दिखाया है की तकनीक किस तरह अनैतिक काम करने में मदद करती है। उपभोक्तावादी संस्कृति के दूसरे औजार विज्ञापन ने हमारे मस्तिष्क पर छाप छोड़ते हुए हमें बाजार की ताकत से अवगत कराया है। विज्ञापन संस्कृति की इस दुनिया पर चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, ममता कालिया और स्वयं प्रकाश जैसे उपन्यासकारों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। प्रसिद्ध लेखिका अलका सरावगी के उपन्यास 'कलि–कथाः वाया बाईपास' में किशोर बाबू की पुत्रवधू का यह कहना कि "मारकेट इतनी नई–नई गाड़ियों से भर गया है जिसको देखो एक शानदार गाड़ी है"[12] यह विज्ञापनों के प्रभाव को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध महिला उपन्यासकार ममता कालिया के उपन्यास 'दौड़' में राजुल जब विज्ञापनों के चलते लोगों के साथ होने वाली धोखाधड़ी पर दुःख जताते हुए नैतिकता की बात करती है तो उसका पति अभिषेक झल्लाकर कहता है– "ओ शिट। सीधा–सादा एक प्रोडक्ट बेचना है, इसमें तुम नैतिकता और सच्चाई जैसे भारी भरकम सवाल मेरे सिर पर दे मार रही हो।"[13] यह महज एक संवाद नहीं, आज की पीढ़ी की उत्तर–आधुनिक सोच है जिसमें विचार का कोई स्थान नहीं है। 'ईंधन' उपन्यास के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ब्रांड एवं विज्ञापन संस्कृति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं– "ब्रांड वाले उनका विज्ञापन भी हमीं से करवाते हैं, समझ नहीं आता कि क्यों मुफ्त में अपने चश्मे पर रैबेन, टी–शर्ट पर नाइके या एडिडास, बरमुडाज पर रेंगलर या मार्क एंड स्पेंसर का नाम या बिल्ला चिपकाए घूमा जाए।"[14]

उपभोक्ता संस्कृति की एक विशेषता यह भी है कि यदि आपके पास इसका आनंद लेने के लिए पर्याप्त धन नहीं है तब भी आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं हैं। तमाम फाइनेंस कम्पनियाँ आपको पैसा देने के लिए तैयार खड़ी रहती हैं। इसके साथ ही क्रेडिट कार्ड भी उपभोक्ता समाज में काफी लोकप्रिय हो चुका है। जिसका उद्देश्य है– पहले खरीदो, फिर चुकाओ। फाइनेंस कंपनियों के इस लुभावने जाल को महिला उपन्यासकार अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'कलि–कथाः वाया बाईपास' के माध्यम से दिखाया है। उपन्यास के एक प्रसंग में जब किशोर बाबू अपने पुत्र से गाडी खरीदने हेतु जुटाए पैसों का स्रोत पूछते हैं तो वह तपाक से जबाब देता है–"पापा, रूपए किसी से माँगने नहीं पड़े। आजकल सौ प्रतिशत फाइनेंस पर गाड़ी मिलती है, बस किस्तों में चुका देंगे।"[15] फाइनेंस के साथ–साथ आजकल एक चीज और प्रचलन में है, वह है छूट। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तीज–त्यौहारों, नव–वर्ष, स्वतंत्रता–दिवस आदि अवसरों को भुनाने हेतु छूट का यह खेल खेला जाता है। भारतीय मध्य–वर्ग इस छूट के अवसर पर बाजार में इस तरह टूट पड़ता है मानो यह छूट न होकर लूट हो। दरअसल यह लूट ही है, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा हमारी लूट। अलका सरावगी इस छूट के प्रभाव को दिखाते हुए उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में लिखती हैं– "दस बजे तक हजार लोगों की भीड़ को काबू में लाने के लिए शहर की पुलिस के जत्थे के जत्थे आ गए। उन दस हजार के अन्दर घुसते–घुसते उतने ही लोग स्टोर के बाहर लाइन लगाए धीरज से खड़े थे...टी.वी, मोबाइल फोन, और डीवीडी प्लेयर से लेकर सोफासेट, कुर्सियाँ तक स्टोर से ऐसे साफ हो रहीं थीं, जैसे कि वे भारी छूट पर न मिलकर मुफ्त में बाँटी जा रही हों ।"[16] आगे वे इन कंपनियों की तानाशाही को रेखांकित करने के क्रम में 'होंडा' कंपनी के कर्मचारियों पर हुए लाठीचार्ज का जिक्र करते हुए शासन और प्रशासन की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। वे लिखती हैं– "हद हो गई। यह देश एकदम बिक गया है। यहाँ की पुलिस, सरकार, पार्लियामेंट सब ये जापानियों–कोरियनों के साथ हैं। किस तरह मार रहे हैं। यह पुलिस है या राक्षस"[17] सच ही, वर्तमान समय में दुनिया की कमान अब इन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में है। इतिहास में जाएँ तो देखेंगे कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी शासन चलाने हेतु यहीं के लोगों का इस्तेमाल किया था।

यदि खान–पान पर उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावों की बात करें तो पाएँगे कि भारत के सभी महानगरों और बड़े शहरों में मैकडी,

केएफसी, सबवे और डोमिनोज जैसे खान–पान केन्द्र खुल चुके हैं, जो धीरे–धीरे कस्बों में भी अपनी पहुँच बना रहे हैं। भूमंडलीकरण पर शोध कर चुके प्रो. पुष्पपाल सिंह इसे 'मैकडोनाल्ड संस्कृति' नाम देते हैं। इन सभी खान–पान केन्द्रों में फास्ट–फूड के नाम पर मोटापा परोसा जा रहा है। 'पीडियाट्रिक ओबेसिटी' नामक जर्नल में प्रकाशित एक रिसर्च के अनुसार भारत में साल 2025 तक मोटापे से पीड़ित बच्चों की संख्या 1.7 करोड़ के पार पहुँच जाएगी। भारत मोटे बच्चों के मामले में दुनिया के 184 देशों की सूची में दूसरे स्थान पर आ जाएगा। इंडियन मेडीकल एशोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. के. के. अग्रवाल का मानना है कि बच्चों में मोटापा बढ़ने के लिए जंक फूड जिम्मेदार है। कई स्कूलों की कैंटीन तक में बच्चों की सेहत को ताक पर रखकर पिज्जा और कोल्ड–ड्रिंक बेचे जा रहे हैं। यह स्थिति काफी चिंताजनक है।

उपरोक्त सभी प्रभावों के साथ–साथ भूमंडलीकरण ने भारतीय राजनीति को भी खासा प्रभावित किया है। 20वीं सदी का अंतिम दशक भारतीय राजनीति में उथल–पुथल का रहा है। इस समय भारतीय राजनीति में कई क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ, जिन्होंने राजनीति की दिशा को परिवर्तित कर दिया। उत्तर–आधुनिकतावादी विचारक इसे 'विकेंद्रीकरण' की स्थिति बताते है।

भूमंडलीकरण के चलते वैश्विक आतंकवाद और पर्यावरण प्रदूषण में बढ़ोत्तरी निरंतर चिंता का विषय बना हुआ है। उपभोक्तावाद के चलते भ्रष्टाचार में बढ़ोत्तरी और नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है। वर्तमान स्थितियों को देखते हुए भूमंडलीकरण से दूर भागना भी असंभव–सा नजर आता है। वर्ष 2002 में जेनेवा में जी–8 के सम्मलेन से पूर्व हजारों लोग प्रदर्शन करते हुए इसको खत्म कर देने की माँग कर चुके हैं। उनका मानना था कि भूमंडलीकरण के कारण गरीब देशों की अर्थव्यवस्थाएँ चरमरा गई हैं, उन पर विदेशी कर्ज बढ़ता जा रहा है, इसलिए उनके कर्ज को माफ करते हुए भूमंडलीकरण को खत्म किया जाना चाहिए। भारत की स्थिति भी बहुत बेहतर नहीं है। आज का दौर तकनीक का दौर है, इस प्रतिस्पर्धा में वही टिक सकता है जो तकनीकी तौर पर बेहद मजबूत हो। 'बिजेनिस स्टैण्डर्ड' की खबर के मुताबिक भारत का तकनीक के मामले में 107वाँ स्थान है। स्पष्ट है हम तकनीक के मामले में अभी काफी पिछड़े हुए हैं। प्रख्यात समाजशास्त्री सच्चिदानंद सिन्हा का मानना है कि विकासशील देशों को अमेरिका से व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए तथा पश्चिमी पूँजीवाद ढंग के विकास और भूमंडलीकरण से स्वयं को अलग करते हुए स्वावलंबी अर्थव्यवस्था विकसित करनी चाहिए। ध्यान रहे, देशी उद्योगों को संरक्षण देने की वकालत महात्मा गाँधी भी करते थे। गाँधी विदेशी उद्योगों को तभी तक स्वीकार करने के पक्ष में थे जब तक कि उनसे देश के किसी काम–धंधे को हानि न पहुँचती हो। बाजार की मार से बचने के दो ही तरीके बचते हैं, पहला है बाजार से भाग खड़े होना और दूसरा है अन्य व्यापारियों को कड़ी चुनौती देना। भूमंडलीकरण से अलग हो जाना तो आज के समय में आसान नहीं है किन्तु अपने उद्योगों का विकास तो हम कर ही सकते हैं। इसके साथ ही हम सादगी, संतोष, सत्य और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों को धारण कर भूमंडलीकरण के अन्य दुष्प्रभावों से खुद को दूर रख सकते हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा० लि० हैदराबाद, संस्करण–2015, पृष्ठ–36
2. बिपनचंद्र–अमलेश त्रिपाठी–बरुण दे, स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करण–2015, पृष्ठ–11
3. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा० लि० हैदराबाद, संस्करण–2015, पृष्ठ–196
4. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ–71
5. बिपनचंद्र–अमलेश त्रिपाठी–बरुण दे, स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करण–2015, पृष्ठ–21
6. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ–15
7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल पपेरबैक्स नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ–14
8. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल पपेरबैक्स नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ–133
9. रवींद्र वर्मा, निन्यानवे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, पृष्ठ–199
10. अमित कुमार सिंह, भूमंडलीकरण और भारत, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृष्ठ–103
11. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल पपेरबैक्स नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ–114
12. अलका सरावगी, कलि–कथाः वाया बाईपास, आधार प्रकाशन पंचकूला(हरियाणा), संस्करण–2011,पृष्ठ–196
13. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृष्ठ–72
14. स्वयं प्रकाश, ईंधन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृष्ठ–49
15. अलका सरावगी, कलि–कथाः वाया बाईपास, आधार प्रकाशन पंचकूला(हरियाणा), संस्करण–2011,पृष्ठ–
16. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल पपेरबैक्स नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ–68
17. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल पपेरबैक्स नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ–117
18. अमित कुमार सिंह, भूमंडलीकरण और भारत, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृष्ठ–103

शोधार्थी (पीएचडी)
हिंदी विभाग (जा.मि.इ.)

शिक्षा एवं साहित्य पर आधुनिक बोध का प्रभाव

डॉ. यशपाल

हिंदी साहित्य जगत् में आधुनिकता की शुरूआत नवजागरण से मान ली जाती है। यह लगभग वही समय है जब ब्रिटिश राज अपने को पूर्णता में स्थापित कर चुका था। इसी समय फ्रांस में औद्योगिक क्रांति भी हुई, जिसका प्रभाव प्रकारान्तर से भारतीय समाज पर भी पड़ा। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण पारम्परिक चेतना, समाज, शिक्षा और साहित्य सभी कुछ चिन्तन के एक नए दौर से गुज़रता दिखाई देता है। अंग्रेजी राज व्यवस्था में ग्रामीण व्यवस्था के समानान्तर आधुनिक नौकरशाही का भी उदय हुआ। इस नौकरशाही ने 'उत्तम खेती मध्धम बान, नौकरी चाकरी भीख समान' जैसी आजीविका की मान्यताओं को कड़ी चुनौती दी। समाज का एक बड़ा वर्ग नौकरशाही की ओर आकर्षित होता चला गया। जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत घरेलू उद्योग प्रभावित हुए। संचार साधनों के कारण नई वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रसार भी हुआ। इस समय शिक्षा के क्षेत्र में भी विशिष्ट परिवर्तन हुआ। परम्परागत शिक्षा प्रणाली के स्थान पर पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का प्रसार हुआ जिसकी लोकप्रियता विभिन्न कारणों से स्वाभाविक भी थी। निशिचित रूप से प्रारंभिक दौर में इस शिक्षा पद्धति के प्रसार में ईसाई मिशनरियों एवं संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान था। शिक्षा के इस दौर में आगे चलकर कलकत्ता मदरसा, हिन्दू कॉलेज तथा एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल विशेष भूमिका निभाते दिखाई देते हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी की शिक्षा देने के मूल उद्देश्य के साथ सन् 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कलकत्ता में हुई। हिन्दुस्तानी की शिक्षा देने के उद्देश्य के लिए इस कॉलेज में खड़ी बोली गद्य का विकास पर विशेष घ्यान दिया गया। कॉलेज के अस्तित्व में आने का एक प्रभाव यह भी पड़ा कि पढ़ा–लिखा एक भारतीय वर्ग सीधे रूप में अंग्रेजी के सम्पर्क में आया, इससे प्रकारातंर से शिक्षित भारतीयों की अभिरूचियों तथा मानसिकता में भी विकासात्मक परिवर्तन हुआ। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से अंग्रेजों के निकट सम्पर्क के कारण भारतीय समाज में एक नवीन चेतना युग का आरंभ कहा जा सकता है। "कॉलेज में भारतीय साहित्य का प्रेस से संबंध स्थापित हुआ और आधुनिकता की जड़ जमीं।"[1]

भारत में पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के प्रसार में 'चार्टर एक्ट' 1813 तथा लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति' का महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। शिक्षा के पश्चिमीकरण का भारतीय चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा। शिक्षित भारतीयों का पाश्चात्य विचारों एवं साहित्य से साक्षात्कार हुआ। इस साक्षात्कार के कारण राष्ट्रीय भावना तथा स्वतंत्रता की अवधारणा के संदर्भ मे व्यापकता से विचार करने का सूत्रपात हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण भारतीयों में पाश्चात्य जीवन दृष्टि को ग्रहण करने की अभिरूचि का विकास हुआ और परिणामस्वरूप प्राचीन सभ्यता, सामाजिक जीवन, सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक विश्वासों, कला साहित्य एवं संस्कृति के पुनःपरीक्षण की प्रवृत्ति का उदय हुआ। स्पष्ट है कि अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली और शैक्षिक विकास ने अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के माध्यम से शिक्षित भारतीयों में नए मूल्यों का विकास किया। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव से उसके प्रति उत्तरोत्तर आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक था। इस प्रभाव से हिंदी साहित्य भी अछूता नहीं रह सका।

तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन पर भी पश्चिम का व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रेस की स्थापना से जन समुदाय के बीच व्यापकता से पत्र–पत्रिकाओं का प्रसार हुआ। लॉर्ड मैकाले और मैकाफ़ के उदार दृष्टिकोण के कारण सन् 1835 में भारतीयों को प्रेस की स्वतंत्रता मिली।[2] देश में अधिक सुविधापूर्वक पत्रों का प्रसार–प्रचार हुआ। प्रेस और पत्रकारिता के इस नए युग के सूत्रपात के कारण स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा प्रसार से प्रबुद्ध वर्ग में राष्ट्र के प्रति एक जनमत तैयार होने लगा था। भारतीय समाज में अपने अधिकारों के प्रति जागृति आई और अभिव्यक्ति तथा चिन्तन की स्वतंत्रता की इच्छा भी पनपती दिखाई देने लगी।

भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तनकामी चिन्तन और अभिव्यक्ति के दर्शन तत्कालीन रचनात्मक साहित्य के साथ–साथ समाज सुधार आन्दोलनों में भी हो जाते हैं। यद्यपि परोक्ष रूप से इन समाज सुधार के प्रारंभिक प्रयासों में अंग्रेजों की महत्वपूर्ण भूमिका है फिर भी

इसकी बागडोर भारतीय समाज सुधारक संभालते दिखाई देते हैं। चूंकि उस समय तक भी भारतीय समाज मूलतः रूढ़िग्रस्त समाज था जोकि ब्रिटिश व्यवस्था के लिए प्रायः अवरोध सिद्ध होता था। अपने निहित स्वार्थों तथा हितों की रक्षा के लिए रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अमानवीय परम्पराओं के उन्मूलन के लिए ब्रिटिश शासन को ठोस कदम उठाने की आवश्यकता पड़ी। इसमें मुख्य रूप से सती प्रथा पर रोक लगाने के लिए लॉर्ड विलियम बेंटिंग द्वारा पारित कानून, विधवा विवाह एक्ट, शारदा एक्ट आदि को देखा जा सकता है। भारतीय समाज में सुधार और परिवर्तन की चेतना अंग्रेजी सम्पर्क के कारण विकसित हुई। तीव्रता से बदलती हुई परिस्थितियों में धर्म की भी पुर्नव्याख्या की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। धर्म के ऐसे पक्ष पर विचार होने लगा जिसका स्वरूप अधिकाधिक मानवीय और उदार हो। अंग्रेजी सम्पर्क के कारण भारतीय समाज तथा जीवन शैली में व्यापक परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन और प्रभाव की चर्चा करते हुए लोकमान्य तिलक लिखते हैं– "ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतवर्ष को जितना लाभ हुआ है उतना किसी दूसरी शक्ति के शासन के अंतर्गत नहीं हुआ।"[3] अंग्रेजी सम्पर्क और प्रभाव के कारण जिस नवीन जीवन दृष्टि का विकास हो रहा था उसने सामाजिक चिंतन और व्यवस्था को भी प्रभावित किया। इस परिवर्तन को 'आधुनिकता' के रूप में देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य की दृष्टि से यह युग भारतेन्दु का युग था। भारतेन्दु के समय में हिंदी साहित्य में आधुनिकता और चिंतन का नयापन दिखाई देने लगा। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली के प्रयोग के साथ नई चेतना भी साहित्य के माध्यम से आधुनिकता प्रदर्शित करती है। इस समय में अभिव्यक्ति के लिए गद्य विद्याओं की भाषा कविता की भाषा से अलग होती दिखाई देती है। इस अलगाव के मूल में वही चेतना थी जिसे आधुनिकता के रूप में देखा जाता रहा है। आधुनिकता भारतेन्दु युग से उत्तरोत्तर और विकसित होती गई और उसने विभिन्न स्तरों से होते हुए अपनी वर्तमान स्थिति को प्राप्त किया है। आधुनिकता को कभी 'प्रक्रिया' तो कभी 'मूल्य' कभी 'विधि' कभी 'कलाबोध' कभी 'भावबोध' कभी 'साहित्य कलागत प्रयोग' और कभी 'आन्दोलन' समझा गया।

पाश्चात्य प्रभाव और विचारधाराओं को आत्मसात् करने के कारण प्रजातांत्रिक आदर्शों में व्यक्ति की गरिमा का बोध होने लगा साथ ही समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भावना का भी विकास हुआ। इसी समय मानवीय हितों को सर्वोपरि देखते हुए सामाजिक कर्तव्य की भावना से विभिन्न सुधार आन्दोलन होते हुए दिखाई देते हैं। राजा राम मोहनराय तथा द्वारिका नाथ ठाकुर द्वारा ब्रह्म समाज 1928, आत्मारंग, पाण्डुरंग द्वारा प्रार्थना समाज–1867, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज–1875, एनी बेसेन्ट द्वारा भारत में थियोसॉफ़िकल सोसायटी–1875, स्वामी विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन इत्यादि इन्हीं मानवीय हितों की रक्षा के प्रयास कहे जा सकते हैं।

संदर्भ

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, फोर्ट विलियम कॉलेज, पृ.162
2. शारदा देवी वेदालंकार, द डेवेलपमेंट ऑफ हिंदी प्रोज़ लिटरेचर इन अर्ली नाइंटीथ सेंचुरी, पृ.166
3. जी.एस.मेटरॉक्स एण्ड एफ. क्राउज़ेट(सं)– स्टडीज़ इन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 366

हिंदी अनुवादक
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

संघ की राजभाषा नीति

संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतराष्ट्रीय रूप है {संविधान का अनुच्छेद 343 (1)}। परन्तु हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी सरकारी कामकाज में किया जा सकता है (राजभाषा अधिनियम की धारा 3) ।

संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जा सकता है । परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं। {संविधान का अनुच्छेद 120}

किन प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अंतर्गत समय समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किए गए निदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

हकीम अजमल ख़ानः स्वदेशी और भारतीय स्वाधीनता को समर्पित एक जीवन

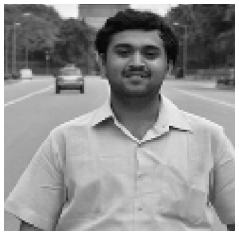

शुभम पांडे

दुनिया में किसी भी राष्ट्र की महानता सिर्फ उसके आर्थिक विकास और सीमाओं के विस्तार या दूसरे देशों में उसके प्रभुत्व होने से नहीं होती, बल्कि उसकी सभ्यता एवं जनता द्वारा संजोई हुई सांस्कृतिक विरासत के प्रति जुड़ाव और मातृभूमि के लिए स्नेह उसे शाश्वत और ऊँचा बनाती है। यह सभी उसे एक अनोखी पहचान देते हुए, एकता के सूत्र में रखकर, निरंतर आगे बढ़ने को प्रेरित करती हैं। भारत में औपनिवेशिक शासन–काल के दौरान, ब्रिटिश ताकतों ने स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक रूप से कुचलने के लिए, भारतीयों की इस अनोखी पहचान को खत्म करने की हरसंभव कोशिशें की थी। इसी का नतीजा था कि अपने पुरखों से मिली इन परंपराओं से जुड़े लोग, वक्त की तमाम मुश्किलों के बावजूद, आने वाली पीढ़ियों के लिए संग्रहित करते हुए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया।

इन्हीं लोगों में से एक थे भारत में यूनानी चिकित्सा पद्धति के विद्वान एवं स्वतंत्रता सेनानी हकीम अजमल ख़ान जिन्होंने उप–महाद्वीप में यूनानी चिकित्सा को मजबूती से स्थापित करते हुए स्वदेशी को चेतना का माध्यम बनाकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में अहम भूमिका अदा की। यह उन्हीं के प्रयासों का असर था कि विदेशी आक्रांताओं के साये में रहते हुए भारतवासी, अपने इतिहास, संस्कारों एवं अधिकारों के प्रति सजक हो पाए। बाद में वह दिन भी आ गया जब अंग्रेजों को भारत छोड़कर अपने घर लौटना पड़ा।

भारत में स्वदेशी चेतना से स्वाधीनता आंदोलन की नींव रखने वाले हकीम अजमल ख़ान का जन्म 11 फरवरी 1868 में दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी हकीमों के परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज सोलहवीं सदी में मुगल साम्राज्य के दौरान पहली बार भारत आए थे। उनके दादा हकीम शरीफ ख़ान, मुगल बादशाह शाह आलम के दरबार में चिकित्सक थे। हकीम अजमल ख़ान ने बचपन में ही कुरआन और पारंपरिक इस्लामिक ज्ञान की प्राप्ति के साथ–साथ यूनानी विज्ञान सीखने से पहले, अरबी और फारसी भाषाओं की तालीम हासिल की थी। इसके पश्चात उन्होंने दिल्ली के सिद्दीकी दवाखाना के हकीम अब्दुल जमील की देखरेख में यूनानी चिकित्सा शास्त्र की विद्या प्राप्त की थी। साल 1892 में यूनानी चिकित्सा में योग्यता पूरी करने के बाद, उन्हें रामपुर के नवाब के मुख्य चिकित्सक के रूप में नियुक्त किया गया, जहाँ उन्होंने 1902 तक अपनी सेवाएँ दी। रामपुर में अपने प्रवास के दौरान, वह सर सैयद अहमद ख़ान के शिक्षा आंदोलन से भी प्रभावित हुए। इसी दौरान हकीम अजमल ख़ान अपने यूनानी उपचार के लिए बहुत प्रतिष्ठित हुए। उनकी कार्य–कुशलता के बारे में यह भी माना जाता है कि वह किसी मरीज की बीमारी का पता उसका चेहरा देखकर ही लगा लिया करते थे। कुछ समय बाद, उन्होंने दिल्ली के अपने पुश्तैनी घर से 'हिंदुस्तानी दवाखाना' की शुरुआत की। यहाँ उन्होंने अपनी जिंदगी का एक बड़ा हिस्सा, बिना किसी धर्म या जाति का भेद करते हुए गरीब–असहाय लोगों का मुफ्त उपचार करने में अर्पित कर दिया।

वहीं ब्रिटिश पक्षपाती व्यवस्था के सामने कमर तोड़ते देसी उद्यमों को देखकर, हकीम अजमल ख़ान यूनानी के प्रति बहुत चिंतित थे। अनिश्चितता के उस दौर में उनकी पूरी कोशिश तिब्ब–ए–यूनानी को भारत में विलुप्त होने से बचाकर उसे गहराई प्रदान करने की थी। इसी को देखते हुए उन्होंने दिल्ली के करोल बाग में आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कॉलेज की स्थापना की। इसका परिणाम यह हुआ कि अब यूनानी चिकित्सा जगत का विकास और विस्तार के साथ–साथ बड़े पैमाने पर अभ्यास और शोध होने लगे। उनके इन प्रयासों से भारत में एक समय समाप्ति की कगार पर पहुँच चुकी यूनानी चिकित्सा प्रणाली को एक नया जीवन मिला। इस क्षेत्र में उनकी काबिलीयत को देखते हुए उस समय की औपनिवेशिक

सरकार ने उन्हें साल 1907 में 'हजीक़–उल–मुल्क' की पदवी दी थी। वहीं बाद में जब अंग्रेज 1910 में 'फूट–डालों राज–करो' नीति के तहत, वैद्य और हकीमों की पेशेवर मान्यता वापिस लेने संबंधीएक प्रस्ताव लाए, तो हकीम अजमल ख़ान ने इसे भारतीय चिकित्सा पद्धति के खिलाफ षड्यंत्र मानते हुए देश भर के सभी वैद्य और हकीमों को एकजुट किया था।

करीब तीस साल की उम्र में हकीम अजमल ख़ान ने अपने घर से निकलने वाले उर्दू अख़बार 'अकमल–उल–अखबार' में लिखते हुए अंग्रेजों के खिलाफ सक्रिय राजनीति में कदम रखा। नतीजतन सियासत में परिवार का पहला सदस्य होते हुए भी वह खुद विदेशी ताकतों से देश की आजादी, राष्ट्रीय एकता और आपसी भाईचारे को मजबूत करने की दिशा में जुट गए। वर्ष 1906 में उन्हीं की अगुवाई में मुस्लिम समुदाय की ओर से हिंदुस्तान में ब्रिटिश राजगद्दी के नुमाइन्दे, वायसरॉय को शिमला में एक ज्ञापन सौंपा गया। इसके अलावा उसी वर्ष दिसंबर महीने में मुस्लिम लीग की स्थापना कार्यक्रम में शिरकत करने ढाका भी गए थे।

स्वतंत्रता संग्राम के समय देश भर से नेताओं की गिरफ्तारियाँ हो रही थी जिससे डर का माहौल था। इसी समय इनकी मुलाकात राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और कांग्रेस के अन्य नेता मौलाना आजाद, मौलाना मोहम्मद अली जौहर और शौकत अली से हुई, जिसके बाद से उन्होंने खिलाफत आंदोलन में भाग लिया। वहीं वर्ष 1921 को अहमदाबाद में कांग्रेस के 36वें अधिवेशन में उन्होंने बतौर पार्टी अध्यक्ष आगे की रणनीतियों पर चर्चा की। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में केवल हकीम अजमल ख़ान ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मुस्लिम लीग, ऑल इंडिया खिलाफत कमेटी और कांग्रेस की अध्यक्षता की थी।

अंग्रेजों की मनमानी और अत्याचार के खिलाफ कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन शुरू किया था। यही समय था जब समूचे देश में बच्चों को यूरोपीय शिक्षा दिलवाने के बजाए, भारतीय शिक्षा व्यवस्था को देश–हित में स्थापित करने के लिए, एक राष्ट्रीय चेतना जागृत हो रही थी। अंग्रेजों के खिलाफ असहयोग तथा भारतीयों के इन्हीं हितों को परिपूर्ण करने के लिए, अलीगढ़ में 29 अक्टूबर 1920 को स्वदेशी शिक्षण संस्थान के तौर पर जामिया मिल्लिया इस्लामिया की स्थापना हुई, जिसके पहले चांसलर के रूप में हकीम अजमल ख़ान नियुक्त किए गए। उनके ही कार्यकाल में जामिया अलीगढ़ से मौजूदा दिल्ली में स्थानांतरित हुआ। इसके अलावा उन दिनों जामिया अपने समय की सबसे बुरी आर्थिक स्थिति से गुजर रहा था, जिससे उबारने में खुद हकीम अजमल ख़ान ने अपने स्तर पर कठिन संघर्ष किया था।

अपने आखिरी दिनों में हकीम अजमल ख़ान ने ब्रिटिश हुकूमत की ओर से दिए खिताब को त्याग दिया और देशवासियों ने उन्हें 'मसीहा–उल–मुल्क' के खिताब से नवाज़ा। धीरे–धीरे अब उनका शरीर, गंभीर होती जा रही दिल की समस्या से जवाब देने लगता है और 59 साल की उम्र में 29 दिसंबर 1927 को उनका निधन हो गया। उनकी मृत्यु के लगभग 20 साल बाद भारत अंग्रेजों से स्वतंत्र हुआ था। यह शायद इस देश का दुर्भाग्य ही था कि देश आजादी का सपना देखने और हकीकत बनाने में अपना पूरा जीवन समर्पित करने वाले हकीम अजमल ख़ान, उस ऐतिहासिक पल का हिस्सा न बन सके। वह हमेशा 'अजल–उल–अल्लाह–खुदातुल्मल' यानी 'किसी को व्यस्त रखने का सबसे अच्छा जरिया है मानवता की सेवा' पर विश्वास करते थे।

99 वर्ष पूर्व स्थापित जामिया मिल्लिया इस्लामिया आज एक प्रतिष्ठित केन्द्रीय विश्वविद्यालय बन चुका है, जो कि लगातार देश की तरक्की को गति दे रहा है। इस साल हकीम अजमल ख़ान के 150वें जन्मदिवस के मौके पर जामिया में उनके जीवन पर आधारित प्रदर्शनी लगाई गई थी, जिसमें उनसे जुड़ी कई यादगार वस्तुएँ प्रस्तुत की गई थी। हकीम अजमल ख़ान अपना पूरा जीवन स्वदेशी के जिस रास्ते से देश को मजबूत और आत्म–निर्भर बनाना चाहते थे, वह आज लगभग साकार होता दिख रहा है। गुलामी के दिनों में भी उनकी जो स्वदेशी चेतना व स्वाधीनता की दृष्टि थी, उसी की बदौलत आज भारत अपने आने वाले भविष्य को सुनहरा देख पा रहा है।

छात्र, हिंदी विभाग, जामिइ

भारत में लोकतंत्र और चुनाव

राशिद कमाल

लोकतंत्र में देश के प्रत्येक नागरिक जो व्यस्क हो, मतदान करने और चुनाव में प्रत्याशी होने का अधिकार होता है। हमारे देश में 18 वर्ष की उम्र के पुरुषों और स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्राप्त है। चुनाव में खड़े होने वाला प्रत्याशी किसी राजनैतिक दल का भी हो सकता है और निर्दलीय या स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में भी चुनाव लड़ सकता है।

भारत में चुनाव प्रायः नगरपालिकाओं, नगर निगमों, विधान सभाओं और संसदों के लिए होते हैं। प्रायः प्रति पाँच वर्ष बाद चुनाव करने का प्रावधान है। इसका लाभ यह है कि मतदाताओं को अपने चुने हुए प्रतिनिधि के आचरण और कार्यों का आकलन करने का अधिकार है। यदि वे समझते हैं कि चुने हुए प्रतिनिधि ने जनहित के लिए कार्य नहीं किया, वह निष्क्रिय और अकर्मण्य बना रहा, अथवा उसने जन–हित की उपेक्षा कर केवल अपने निजी स्वार्थ के लिए या दल–विशेष, जाति–विशेष के हित में कार्य किए तो उसे चुनाव के लिए न खड़ा होने को बाध्य किया जा सकता है अथवा जन–इच्छा के विरुद्ध भी खड़ा होने पर उसे चुनाव में हराया जा सकता है। इसका लाभ यह है कि चुने हुए प्रतिनिधियों पर जन–मत का दबाव रहता है। यह दबाव केवल व्यक्तियों पर ही नहीं पूरे राजनितिक दल पर भी होता है। अतः जिस दल की सरकार बनी होती है उसे भी जनहित का ध्यान रखना पड़ता है। भारत में केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारें अपनी जन–विरोधी नीतियों के कारण, जनता की उपेक्षाओं पर खरी न उतर पाने के कारण अगले चुनाव में बुरी तरह से पराजित हुई हैं, नए राजनितिक दल या दलों को मिलकर मिलीजुली सरकार बनाने का अवसर दिया गया है। सबसे ज्वलंत उदाहरण है 1976 में इन्दिरा गाँधी की आपातकाल की घोषणा के बाद, उस काल में हुई जनता की भावनाओं को कुचलने के परिणामस्वरूप 1977 में हुए चुनावों में उनकी पराजय। कांग्रेस के स्थान पर मिली–जुली पार्टियों की गठबंधन सरकार जिसके प्रधानमंत्री श्री मुरारजी देसाई थे। विधान–सभाओं में भी यह स्थिति उत्पन्न होती रही है, परिवर्तन होते रहे हैं और इसलिए भारत में लोकतंत्र को परिपक्व, प्रौढ़ और सच्चा माना जाता है।

भारत का यह दावा है कि हमारा जनतंत्र परिपक्व है, पौढ़ है, जड़ें जमा चुका है और वह विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है जो अपने आप में केवल अर्धसत्य है। वास्तविकता यह है कि सफल लोकतंत्र के लिए नागरिकों में, मतदाताओं में जो गुण होने चाहिए उनका भारत के नागरिकों में अभाव है।

चुनाव के समय प्रत्याशी को अपने दल की ओर से खड़ा करते समय प्रायः उसकी योग्यता, सद्चरित्र, देशभक्ति, जन–सेवा की भावना का आकलन नहीं किया जाता बल्कि इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है कि आगामी चुनाव में उसकी विजय की सम्भावना कितनी है। इसके लिए भारत के मतदाता भी उत्तरदायी हैं। मतदाता भी प्रत्याशी की योग्यता, क्षमता, चारित्रिक गुणों पर ध्यान नहीं देते। जिस जाति, धर्म या समुदाय के निवासियों की संख्या जिस क्षेत्र में अधिक होती है, उसी जाति या वर्ग के व्यक्ति को वहाँ प्रत्याशी बनाया जाता है। परिणाम यह होता है कि योग्य, समाजसेवी, सद्चरित्र व्यक्ति या चुनाव लड़ने का साहस ही नहीं करता अथवा चुनाव में पराजित होता है और उसके स्थान पर बहुसंख्यक जाति का होने के कारण अयोग्य, असक्षम, धूर्त और मक्कार व्यक्ति चुनाव जीत जाता है। मतदाताओं को अपने पक्ष में करने के लिए धन, बाहुबल, साम्प्रदायिक विद्वेष, धर्मोन्माद का भी सहारा लिया जाता है। अतः चुनाव सच्चा नहीं होता, चुने हुए प्रतिनिधि वास्तविक लोकसेवक नहीं होते हैं।

भारत में लोकतंत्र को असफल बनाने का एक कारण है दल–बदल की प्रवृति, आया राम गया राम की प्रवृति। जिस दल का प्रत्याशी बनकर व्यक्ति चुनाव जीतता है चुनाव के बाद वह धन, पद, कुर्सी के लालच में आकर उस दल से नाता तोड़कर दूसरे दल में मिल जाता है। परिणाम होता है सरकारें बदलती रहती हैं।

अनिश्चय और अस्थिरता के वातावरण में जनहित के कार्य और योजनाएँ ठप्प हो जाती हैं या कछुए की चाल से रेंगती रहती हैं। अपने दल की सरकार बनाने के लिए सौदेबाजी होती है, खरीद–फरोख्त का बाजार गर्म होता है, मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि उसे जम्बू मंत्रिमंडल कहा जाता है। इसका आर्थिक दुष्परिणाम, शासनतंत्र पर कुप्रभाव क्या होता है, इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु कुर्सी का लोभ जनहित और जन–कल्याण से ऊपर है। अतः सच्चा लोकतंत्र कहाँ है जिसका उद्देश्य होता है जनहित, लोक–कल्याण। सारांश यह कि भारत में लोकतंत्र तो है, पर वह अभी अपरिपक्व है। इसीलिए कई दिशाओं से चुनावों में सुधार की माँग उठी है, कुछ कदम भी उठाए गए हैं पर अभी भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती।

छात्र, एम.ए. हिंदी
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

स्वच्छता और स्वास्थ्य

डॉ. अय्यूब ख़ान

स्वच्छता हमारी परम्परा का हिस्सा है। स्वच्छता को स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने वाले विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया है। प्राचीन काल में मोहन जोदड़ो और हडप्पा में नाली और मलजल निकास प्रणाली विकसित थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में स्वच्छता बनाए रखने में राज्य को भी भागीदार बनाया था जबकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नगर योजना एवं कूड़ा–करकट के निपटान के बारे में विस्तार से वर्णन है। अशोक महान के आज्ञा पत्र में पाटलीपुत्र नगरी की स्वच्छता के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वच्छता हमारी सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करता है, उसी प्रकार स्वच्छता मानव शरीर को स्वस्थ बनाने में मदद करती है।

भारत में आजादी के समय मोरे कमेटी 1946 एवं पर्यावरण समिति 1948 में शहर और ग्राम योजना के तहत स्वच्छता के बारे में विस्तार से चर्चा की गई। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने भी स्वच्छता की आवश्यकता के बारे में भारत के नागरिकों को प्रोत्साहित किया।

महात्मा गाँधी जी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर, 2014 में हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने स्वच्छता अभियान की शुरूआत की। हमारे देश को भी अग्रणी देशों की लाइन में खड़ा करने की दिशा में बढ़ाया गया यह पहला कदम है। देश स्वच्छ होगा तो स्वस्थ होगा और इससे स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण होगा। दुर्भाग्यवश सामाजिक और आर्थिक मोर्चों पर हम बहुत पिछड़े हुए हैं जिसकी वजह से हमारा देश विभिन्न बीमारियों से घिरा हुआ है। इसका मुख्य कारण अस्वच्छता है। इस पर हमें काम करना चाहिए, सरकार का साथ देना चाहिए।

हमारा माइंडसेट बदलने की आवश्यकता है। अस्वच्छता का सबसे बड़ा कारण मानव स्वयं है। हमें कूड़ा–करकट यथास्थान पर डालना चाहिए, जैसे भारत के राष्ट्रपति एवं जामिया के पूर्व वाइस–चांसलर जनाब ज़ाकिर हुसैन साहब को रोड़ पर या क्लास में कागज दिखता था तो वो उठाकर जेब में रख लेते थे एवं उसको सही जगह पर फेंकते थे।

जामिया में भी 'स्वच्छ भारत अभियान' को 2 अक्टूबर, 2014 से ही लागू किया गया। हमारे वाइस–चांसलर साहब ने जामिया सीनियर सैकेंडरी स्कूल में जामिया के छात्रों, अध्यापकों एवं स्वच्छता कर्मियों को स्वच्छता के महत्त्व के बारे में बताया एवं उस पर किस प्रकार काम करना है यह भी जानकारी हो। जामिया के स्वच्छता विभाग ने इस पहल का स्वागत किया एवं हमारे माननीय प्रधानमंत्री के सपने को साकार करने के लिए दिल और जान से लग गया जिसका परिणाम सामने है। आज जामिया कई विश्वविद्यालयों से स्वच्छता में आगे है।

स्वच्छता में केवल अपने आसपास की सफाई नहीं है बल्कि कूड़ा कचरे को उपयुक्त जगह पर डालना एवं उसका निपटान, सीवर की सफाई, मच्छरों की रोकथाम आदि मुख्य कार्य है। परन्तु बहुत ही दुर्भाग्य एवं शर्म की बात है कि आज ज्यादातर लोग कचरा कूड़ेदान में नहीं डालते बल्कि सड़क पर फेंकते हैं। कैंटीन वाले बचा हुआ खाना या तो सीवर में बहाते हैं जिस कारण सीवर जाम होता है या फिर सूखे कचरे वाले डिब्बे में डाल देते हैं जिस कारण वह खाना सड़ता है एवं बदबू करता है।

जामिया के मौजूदा प्राधिकारी सफाई व्यवस्था एवं मच्छरों की रोकथाम के लिए हर समय स्वच्छता विभाग को निर्देश देते रहते हैं। उन्होंने स्वच्छता एवं मच्छरों की रोकथाम में प्रयुक्त होने वाले उपकरण मँगवाकर हमारे कार्य को सुगम एवं प्रभावशाली बनाने में मदद की है। इसी के साथ हमारे प्राधिकारियों ने अन्य भारतीय एजेंसियाँ जैसे जल बोर्ड, एम.सी.डी., उत्तर प्रदेश केनाल, सी.पी. डब्ल्यू.डी, मेट्रो आदि से भी पत्राचार करके उनसे मदद ली है जिसके सकारात्मक परिणाम दिखाई दिए हैं। पिछले वर्ष हमारा जामिया शून्य डेंगू क्षेत्र बना। जामिया के स्वच्छता विभाग के कर्मचारी लगन और मेहनत से कार्य करते हैं।

जामिया में पूर्ण स्वच्छता हेतु सभी छात्रों, शिक्षकों, अधिकारियों और कर्मचारियों को एक साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है। गुरूओं के मार्गदर्शन, छात्रों और कर्मचारियों के सहयोग से ही हम उल्लेखनीय कार्य करके जामिया को स्वच्छ और सुन्दर बना सकते हैं। स्वच्छता को हमें क्रांति के रूप में लेना होगा। हम सब को मिलकर इसके लिए कार्य करना होगा। स्वच्छता हमारी पहली एवं प्राथमिक जिम्मेदारी है। इसे हमें अपनी आदत बनाना चाहिए। स्वच्छता एक पुण्य का कार्य है। इस्लाम में कहा गया है–स्वच्छता आधा ईमान है। स्वच्छता हमें मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं बौद्धिक रूप से स्वस्थ रखता है। सभी के द्वारा मिल कर लिया गया कदम एक बड़े कदम के रूप में परिवर्तित हो सकता है। इसमें ज़्यादा कुछ नहीं करना है यदि हम अपनी व्यक्तिगत स्वच्छता, अपने आसपास की स्वच्छता, अपने कार्य स्थल की स्वच्छता को अपनी आदत बना लेते हैं तो इससे जामिया का भला होगा, देश का भला होगा। हमारे प्रधानमंत्री एवं गाँधी जी के सपनों को साकार करने की दिशा में कदम होगा।

अन्त में यही कहना चाहता हूँ कि यह हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के स्चच्छ भारत अभियान स्वच्छता के उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक आवश्यक कदम है। हमें इसमें न केवल सहयोग करना चाहिए, बल्कि स्वच्छता को अपनी आदत, शौक और आवश्यकता बना लेना चाहिए। इसको हम स्कूल में सुबह की प्रार्थना में बच्चों के साथ वार्तालाप करके उन्हें इस दिशा में प्रेरित कर सकते हैं। इसे एक विषय के रूप में विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाया जा सकता है। इसको अलग से एक विषय के रूप में भी रखा जाना चाहिए बल्कि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत इसको डिग्री कोर्स भी बना सकते हैं। इसमें स्वच्छ पर्यावरण, स्वच्छ जल, निजी स्वच्छता, ठोस कचरे का निपटान, विभिन्न बीमारियों, रोगवाहक परजीवी, रेनवाटर हार्वेस्टिंग आदि की शिक्षा दी जा सकती है। अतः कहा जा सकता है कि स्वच्छता एक विज्ञान है जो स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है एवं किसी भी कार्य को करने में सहायक होता है।

स्वच्छता निरीक्षक
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

अफ़ज़ल अयाज़ ख़ान

मानवता के वास्ते

बंद दरवाज़े खोल दो, शुद्ध हवा के वास्ते।
ढूँढ लेंगे वह निशां, जिनसे चले थे रास्ते।।

संस्कृतियों ने संभाला, टूटे दिलों के आस्थे।
तलवारें जहाँ नाकाम थीं, युद्ध कौशल के वास्ते।।

साहित्य ने जगाया, भविष्य की उम्मीदें।
मस्तक को ऊँचा किया, आत्म–सम्मान के वास्ते।।

घोर अंधकार था, युग का दुर्गम व्यवहार था।
प्रकाश–पुंज आई धरा पे, जीवन–ज्योति के वास्ते।।

आकाश में हुआ षड़यंत्र, विपत्तियों की घटा छाई।
मेघ ने बरसाया जल, हाँ जीवन के वास्ते।।

प्रकृति की सुंदर छटा ने, बचपन को सिखाया अल्हड़पन।
गुरूओं से तब मंत्र मिले, उज्ज्वल भविष्य के वास्ते।।

गुरूओं ने सद् सीख दी, जग को आत्मनिर्भर किया।
ऐसा जीवन बोध दिया, जो उचित था मानवता के वास्ते।।

प्रवर श्रेणी लिपिक, कुलसचिव कार्यालय
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

युवाः देश की उन्नति का भागीदार

साकिब अज़ीज़

देश का युवा देश का निर्माता है। भारत जैसे विकासशील देश को विकसित देश में बदलने का दायित्व युवा वर्ग के ही कंधों पर है। अतः बच्चों का पालन–पोषण, शिक्षा व संस्कार, इन्हीं सब पर निर्भर करता है कि भावी युवा देश को प्रगति की ओर अग्रसर करेंगे या मात्र मूकदर्शक बनकर परिस्थितियों का रोना रोते रह जाएंगे।

देश की उन्नति में सबसे बड़ा योगदान एक शिक्षित व्यक्ति ही दे सकता है। अगर युवा शिक्षित है तो वह सीधे तौर पर दावेदार है एक बड़ा डॉक्टर, कलेक्टर, वकील, व्यापारी या अफ़सर बनने का। शिक्षा व कौशल के बल पर विदेश में जाकर भी देश का नाम रोशन करने में सक्षम है।

यहाँ सोचने की बात है कि सिर्फ शब्द 'सक्षम' या 'दावेदार' ही क्यों प्रयोग हुआ है। जी हाँ, क्योंकि शिक्षा नौजवानों को सिर्फ एक डॉक्टर या अफसर ज़रूर बना सकती है लेकिन अच्छा और ज़िम्मेदार डॉक्टर, अफसर होने का दायित्व निभाना नहीं सिखा पाती। हमारे देश में आज असंख्य ऐसे उच्च शिक्षित अधिकारी तो हैं मगर वे अपना दायित्व नहीं समझते हैं जिसके कारण उनकी सेवा का लाभ न तो जनता को पहुँचता है और न ही देश को।

तो क्या कारण है इस सबका? यह विचारणीय है कि आज का सुचा शिक्षित तो हो गया है परंतु सभ्य नहीं रहा। नैतिक मूल्य बहुत दूर कहीं पीछे छूट गए हैं। वर्तमान युवा पीढ़ी सभ्य नहीं है। छोटों से प्रेम व बडों का आदर बीते समय की बात हो गई है। बचपन से युवा होते–होते कहीं पाश्चात्य सभ्यता का दुष्प्रभाव तो कहीं अपने ही आसपास के वातावरण का असर उन्हें गलत दिशा में ले जाता है। व्यस्त जीवन शैली के चलते माँ बाप भी कुछ हद तक इसके जिम्मेदार हैं। जिन परिवारों में माता–पिता अपने ही बच्चों के लिए समय नहीं निकालते, उन्हीं घरों के युवा अक्सर आदर–निरादर, सही–गलत व सुसंगत–कुसंगत का फर्क नहीं समझ पाते। उन्होंने अपने माँ–बाप को पालन–पोषण के नाम पर सिर्फ पैसा खर्च करते देखा है। बड़े स्कूल में भेज देना व अनगिनत सुविधाएँ उपलब्ध करा देना, सब यही तो देखा है। अपना अनमोल समय देकर संस्कार तो सिखाए ही नहीं। इसी के परिणामस्वरूप ऐसे युवा गलत गतिविधियों में लग जाते हैं एवं समाज में कुछ योगदान करने के बजाए समाज का प्रारूप ही बिगाड़ देते हैं। तो देश के विकास में योगदान करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसके अलावा समाज के अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों की लापरवाही की वजह से भी ऐसे ही युवा भ्रष्ट कामों में लीन हो जाते हैं और यहाँ से शुरूआत हो जाती है समाज व देश के पतन की। यही युवा आगे चलकर भ्रष्ट नेता या भ्रष्ट अफसर बनकर पूरे समाज का वातावरण खराब कर देते हैं व देश की छवि धूमिल कर देते हैं।

अपने दिल्ली शहर से ही उदाहरण लीजिए। पर्यटन स्थलों पर विदेशी या बाहरी राज्यों से आने वालों के साथ दुव्यर्वहार की घटनाएँ आए दिन सुनने को मिलती हैं। दुकानदार व व्यापारियों का बस नहीं चलता कि उन्हें सामान अधिकाधिक दामों पर बेचा जाए। किसी अधिकारी, इंजीनियर, वकील आदि के पास समस्याएँ लेकर जाने वाले लोग उनकी नज़र में एक ग्राहक के सिवा कुछ नहीं है। छोटा सा यह शब्द 'सभ्य' परंतु इसके अभाव में युवा शिक्षित होने के बावजूद देश निर्माण में सहभागी नहीं बन पाता है।

अब देखना यह है कि हमारे वो युवा जो शिक्षित व सभ्य भी हैं, पीछे कैसे रह जाते हैं। इसका मुख्य कारण है जागरूकता व संघर्ष करने की क्षमता की कमी। लक्ष्यविहीन होना भी मुख्य कारणों में से एक है। आज का युग मोबाइल व इंटरनेट का युग है। यह सिर्फ संचार का साधन नहीं रहा बल्कि असीम ज्ञान का स्रोत भी है। ऐसे में युवाओं को चाहिए इसका प्रयोग करके समुचित अवसरों के प्रति जागरूक रहें। कब, किस समय व कहाँ आवेदन भरना है, कौन सी व किस तरह की परीक्षा के लिए अपने आप को तैयार करना है, यह सब जानने के लिए अब इधर–उधर दौड़ने की आवश्यकता नहीं। बल्कि जरूरत है सिर्फ लक्ष्य निर्धारित करना व जागरूक रहना। साथ ही देश के बाहर होने वाली गतिविधियों के प्रति भी जागरूक रहना होगा चाहे वह खेल हो, संगीत हो या व्यापारिक नीतियाँ हों। जागरूक होंगे तो ही उसके अनुरूप अपनी क्षमता का विकास कर सकेंगे। निरंतर संघर्ष करना है। परिस्थितियाँ अनुकूल हों या प्रतिकूल, हार नहीं मानना है, प्रयत्न करना है। आशा है यह दायित्व सभ्य युवा वर्ग ही पूरा कर सकता है। इस संबंध में कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने युवाओं को जो संदेश दिया है वह बिल्कुल सटीक है–

नर हो न निराश करो मन को कुछ काम करो
जग में रहकर कुछ नाम करो
यह जन्म हुआ किस अर्थ में अहो
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो
कुछ तो उपयुक्त करो तन को
नर हो न निराश करो मन को।

यहाँ अशिक्षित युवा वर्ग को नकारा नहीं जा सकता जो कि हमारे देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। कारण जो भी हो, गरीबी या जागरूकता की कमी; यह अशिक्षित युवा वर्ग देश के लिए तब और घातक सिद्ध हो जाता है जब इन्हें कोई औपचारिक या अनौपचारिक ट्रेनिंग का अवसर नहीं मिलता और न ही कोई कौशल सीखेन का

अवसर मिल पाता है। अगर इन्हें समुचित अवसर मिले तो यह वर्ग भी देश की उन्नति का हिस्सा बन सकता है अन्यथा यही युवा रोजगार के अभाव के कारण अपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं। कितने ही युवा उच्चशिक्षा पाकर भी सिर्फ रिक्शा चलाकर या मजदूरी करके परिवार का पालन कर रहे हैं। कुछ समय बाद वे हताश व निराश हो जाते हैं। ऐसे में इन युवाओं से देश के लिए कुछ करने की आशा रखना व्यर्थ है।

निःसंदेह हमारा युवा बहुत ऊर्जावान है। आवश्यकता है सिर्फ इस ऊर्जा को सही दिशा देने की। अन्यथा दिशाहीन व लक्ष्यविहीन होकर नकारात्मकता की ओर चल पड़ेंगे और उनकी क्षमताओं का ऐसे ही हनन होता रहेगा। अब इस समस्या का निदान क्या है? सरकारी व गैर–सरकारी समाजसेवी संस्थाओं को चाहिए कि युवाओं की क्षमताओं को पहचानें और समुचित अवसर दिलाएं जिससे वे अपने परिवार का पालन–पोषण व शिक्षा आदि का प्रबंध भली–भाँति कर सकें और देश का सक्षम सबल नागरिक बनकर देश का गौरव बढ़ाएँ।

युवा हो तो जागो कि देश को आगे बढ़ाना है।
असंभव को संभव तुम्हीं को बनाना है।।
तुम ज्ञानी हो, वीर हो साहसी हो, धीर हो।
कहाँ तुमने अपनी क्षमता को पहचाना है।।
भ्रष्टाचार हो, कहीं दुराचार हो।
तुम्हें ही हर अंधियारा मिटाना है।।
यह देश है तुम्हारा, प्रतीक्षा में है जग सारा।
बस लक्ष्य तुम्हारा सही दिशा को पाना है।।
युवा हो तो जागो कि देश को आगे बढ़ाना है।
असंभव को संभव तुम्हीं को बनाना है।।

सहायक कुलसचिव
स्वच्छता विभाग

राजभाषा संकल्प, 1968

संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित निम्नलिखित सरकारी संकल्प आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है:

संकल्प

"जब तक संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा का प्रसार, वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है :

यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के प्रसार एंव विकास की गति बढ़ाने के हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी ।

2. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त भारत की 21 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है , और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाए किए जाने चाहिए:

यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के साथ–साथ इन सब भाषाओं के समन्वित विकास हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हो और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें।

3. जबकि एकता की भावना के संवर्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रि–भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णत कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी किया जाना चाहिए:

यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के, दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए, और अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ साथ हिंदी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

4. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्राण किया जाए।

यह सभा संकल्प करती है कि–

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्त्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिंदी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिंदी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यत होगा; और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।"

पेंशन एक सामाजिक सुरक्षा, दान नहीं सम्मान है

मोहम्मद जावेद

सबसे पहले हम इस पर चर्चा करते हैं कि नई पेंशन योजना क्या है? नई पेंशन व्यवस्था यानी राष्ट्रीय पेंशन योजना (एनपीएस) 1 जनवरी, 2004 को या उसके बाद केंद्र सरकार (सशस्त्र बलों और न्यायाधीशों को छोड़कर) में सभी नई भर्तियों के लिए अनिवार्य योगदान योजना है। कुछेक राज्यों (बंगाल) को छोड़कर सभी राज्य सरकारों ने भी इसे अनिवार्य बना दिया है। 2013 में स्थापित एक स्वतंत्र पेंशन फंड नियामक और विकास प्राधिकरण (पीएफआरडीए), एनपीएस को नियंत्रित करता है।

यह यूरोप मॉडल पर आधारित योजना है जिसे आम भाषा में निजी पेंशन या पेंशन का निजीकरण कह सकते हैं। यह योजना 2003 में सरकार द्वारा लागू की गई थी। जबकि पेंशन नियामक की स्थापना के बारे में 2004 में कानून पारित किया गया। बड़े पेंशन फंड को इक्विटी और बांडों में निवेश किया जाता है, जिससे बाजार संबंधी जोखिम अधिक बढ़ जाता है।

एक निश्चित कट ऑफ तिथि के बाद शामिल होने वाले कर्मचारियों के लिए यह अनिवार्य है। साथ ही उनके वेतन का 10% और 10% सरकार का जिसे कर्मचारियों के दबाव के कारणवश अब बढ़ाकर 14% किया गया; स्वचालित रूप से निधि में जा रहा है। त्रिपुरा कुछ ऐसे राज्यों में से एक था, जो अपने कर्मचारियों के लिए एनपीएस लागू नहीं कर रहा था और पुरानी पेंशन योजना को जारी रखे हुआ था, यानी जो कर्मचारियों की कड़ी मेहनत से अर्जित की गई पेंशन को जोखिम में नहीं डालना चाह रहा था, लेकिन अब वहाँ भी इसे समाप्त कर दिया गया है और नई पेंशन स्कीम लागू कर दी गई है।

एनपीएस (NPS) की मुख्य समस्याएँ

1) कर्मचारी के अपने ही अंशदान पर भी निकासी की बेहद अन्यायपूर्ण व्यवस्था।

2)सेवा काल में मृत्यु की दशा में भी फैमिली पेंशन की सुविधा का न होना। (यही नहीं अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग तरीके को अपनाया जाना, यथा झारखण्ड में कर्मचारी की मृत्यु होने पर कर्मचारी के खाते का समस्त पैसा सरकार के पास चला जाता है जबकि पंजाब सरकार में फैमिली पेंशन की जगह नौकरी देने का प्रावधान है। वहीं कई राज्य सरकारों में नियम ही स्पष्ट नही हैं जबकि उन राज्यों में एनपीएस (NPS) लागू है।

3) सरकार के द्वारा अपना अंशदान 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 14 प्रतिशत निवेश किए जाने के बावजूद सेवानिवृत्ति के बाद न्यूनतम पेंशन की कोई गारन्टी नही है जबकि पुरानी व्यवस्था में अन्तिम बेसिक सैलरी का 50% और महंगाई भत्ता नियत था।

4) ऐसे कर्मचारियों को न्यूनतम पेंशन का प्रावधान नहीं है जो कई वर्षों की अस्थायी सेवा करके 2004 या बाद में नियमित हुए और अब 10 से 14 वर्षों की सेवा देने के बाद सेवानिवृत्त हो रहे हैं।

एनपीएस (NPS) में अपेक्षित अनिवार्य सुधार जो किये जाने चाहिएः

1) कर्मचारी के अपने अंशदान पर न तो जमा करने की कोई लिमिट हो और न ही निकासी की कोई शर्त।

2) कर्मचारी की सेवाकाल में मृत्यु की दशा में पुरानी पेंशन की तरह आजीवन फैमिली पेंशन की व्यवस्था की जिम्मेदारी सरकार की हो न कि कम्पनी की और इस स्थिति में मृत कर्मचारी के खाते की समस्त

रकम और ग्रैच्युटी कर्मचारी के नॉमिनी को मिलना सुनिश्चित किए जाने का प्रावधान हो।

3) सेवानिवृत्ति के बाद अन्तिम बेसिक सैलरी का 50% कम से कम पेंशन की गारन्टी निश्चित की जाए।

नई पेंशन योजना और पुरानी पेंशन योजना में अंतरः

1– पुरानी पेंशन पाने वालों के लिए जी0 पी0 एफ0 सुविधा उपलब्ध है जबकि नई पेंशन योजना में जी0 पी 0एफ0 नहीं है। जी0 पी0 एफ0 पर ब्याज दर निश्चित है जबकि एन0 पी0 एस0 पूरी तरह शेयर बाजार पर आधारित है।

2– पुरानी पेंशन वालों के परिवार वालों को सेवाकाल में मृत्यु पर डैथ ग्रेच्युटी मिलती है जो सातवें वेतन आयोग ने 10 लाख से बढाकर 20 लाख कर दिया है जबकि नई पेंशन वालों के लिए डैथ ग्रेच्युटी की सुविधा अभी हाल ही में की गई है।

3– पुरानी पेंशन योजना में रिटायरमेन्ट के समय एक निश्चित पेंशन (अन्तिम वेतन का 50%) की गारंटी थी जबकि नई पेंशन योजना में पेंशन कितनी मिलेगी यह निश्चित नहीं है। यह पूरी तरह शेयर मार्केट व बीमा कम्पनियों पर निर्भर है।

4– पुरानी पेंशन सरकार देती है जबकि नई पेंशन बीमा कम्पनी देगी। यदि कोई समस्या आती है तो हमें सरकार से नहीं बल्कि बीमा कम्पनी से लड़ना पड़ेगा।

5–पुरानी पेंशन पाने वालों के लिए रिटायरमेंट पर ग्रेच्युटी (अंतिम वेतन के अनुसार 16.5 माह का वेतन) मिलता है जबकि नई पेंशन वालों के लिये ग्रेच्युटी की व्यवस्था सरकार ने हाल ही में की है।

6– पुरानी पेंशन के लिए वेतन से कोई कटौती नहीं होती है जबकि नई पेंशन योजना में वेतन से प्रति माह 10% की कटौती निर्धारित है ।

7– पुरानी पेंशन में आने वाले लोगों को सेवाकाल में मृत्यु होने पर उनके परिवार को पारिवारिक पेंशन मिलती है जबकि नई पेंशन योजना में पारिवारिक पेंशन को समाप्त कर दिया गया है।

8– पुरानी पेंशन पाने वालों को हर छह माह बाद महँगाई तथा वेतन आयोगों का लाभ भी मिलता है जबकि नई पेंशन में फिक्स पेंशन मिलेगी। महँगाई या वेतन आयोग का लाभ नहीं मिलेगा।

9– पुरानी पेंशन योजना में जी0 पी0 एफ0 से आसानी से लोन लेने की सुविधा है जबकि नई पेंशन योजना में लोन की कोई सुविधा नहीं है (विशेष परिस्थिति में कठिन प्रक्रिया है केवल तीन बार वह भी रिफण्डेबल)।

10–पुरानी पेंशन योजना में जी0 पी0 एफ0 निकासी (रिटायरमेंट के समय) पर कोई आयकर नहीं देना पडता है जबकि नई पेंशन योजना में जब रिटायरमेंट पर जो अंशदान का 60% वापस मिलेगा उस पर आयकर लगेगा।

केंद्र सरकार ने स्पष्ट रूप से राज्य की सरकारों को निर्देशित किया है कि केन्द्र प्रायोजित योजनाओं में ठेकेदारी पर रोजगार दिया जाए। ऐसे कर्मचारियों को अपने निजी नियोक्ताओं (ठेकेदार) से कम वेतन मिलता है, व्यावहारिक रूप से कोई लाभ नहीं होता है और नौकरी की सुरक्षा भी नहीं होती है। पिछले एक दशक में राज्यों के नियमित कर्मचारियों की संख्या लगभग 82 लाख से घटकर 60 लाख हो गई है। यह मुख्य रूप से इसलिए हुआ है क्योंकि लगभग सभी राज्यों में नौकरियों को आउटसोर्स किया गया है जिसका दंश कर्मचारियों को झेलना पड़ रहा है। अतः इस नई पेंशन स्कीम से कर्मचारी खुश नहीं हैं और वे पुरानी पेंशन की बहाली की माँग कर रहे हैं। एनपीएस ने हमारे और हमारे परिवार के भविष्य को, हमारी सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा को खत्म कर दिया है।

प्रयोगशाला सहायक
ऑरल पैथोलॉजी एवं माइक्रोबायोलॉजी विभाग
दंत चिकित्सा संकाय, जामिइ

भारत की शौर्य परंपराओं का प्रतीकः दिल्ली का राष्ट्रीय समर स्मारक

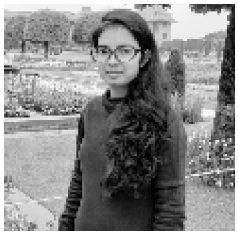

प्रियंका

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा"

किसी भी देश की सुरक्षा और सम्मान उसके रक्षकों से होती है, उसके सैनिकों से होती है। वह सैनिक जो अपनी माँ समान मातृभूमि और उस पर पोषित होने वाले अपने कुटुम्ब समान नागरिकों की रक्षा का प्रण लेता है और समय की माँग पर उसी प्रण को राष्ट्र की एकता और सम्मान की हिफाजत में पूरा करते हुए, सर्वोच्च बलिदान भी देता है। यह एक सैनिक की पहचान होती है, जिस पर पूरा देश उनके होने पर गर्व करता है। एक सैनिक सच्चे मायने में अपने देश का प्रतिनिधि होता है, जिसके व्यक्तित्व से ही उसके देश की आशा, आकांक्षा, पराक्रम, दूरदर्शिता और अनुशासन झलकता है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि किसी भी देश पर उसके सैनिकों का पहला हक होता है, जो शत्रुओं से अपने देश और उसके ध्वज की रक्षा के लिए अपने व्यक्तिगत हितों और इच्छाओं का त्याग करते हुए, एक कठिन जीवन को चुनता है। इसी तरह भारत अपने उसी सभी बहादुर सैनिकों का ऋणी है, जिन्होंने देशभक्ति के इसी जज़्बे के साथ दुश्मनों की हर नापाक साजिशों से हमें महफूज रखा और हमारी सलामती और आबरू के लिए जंग के मैदान में अपनी शहादत दी।

भारत की महान सैन्य परंपरा दुनिया भर में अपनी एक अलग पहचान रखती है। चाहे वह प्राचीन भारत के राज– साम्राज्य हो या ब्रिटिश राज से होते हुए वर्तमान भारत गणराज्य हो, इन सभी कालखंडों में भारतीय सैनिकों की वीरगाथा सुनने को मिलती हैं। किंतु देश की स्वतंत्रता के पश्चात, यह आवश्यकता महसूस की गई कि देश की भावी पीढ़ियों को राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा के लिए हमारे वीर सैनिकों द्वारा किए गए अभूतपूर्व त्याग और बलिदान को बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करके बच्चों में सैनिकों के प्रति जागरूकता, आदर और गर्व की भावना को जागृत किया जाए। ठीक इसी प्रकार ब्रिटिशराज में अंग्रेजों की तरफ से प्रथम विश्व युद्ध और अफगान युद्ध में भाग लेने वाले भारतीय सैनिकों की याद में तब के औपनिवेशिक ब्रिटिश शासकों ने उनके युद्ध में शहीद हुए 84,000 भारतीय सैनिकों की याद में राजधानी दिल्ली में 'इंडिया गेट' के नाम से युद्ध स्मारक बनवाया था, जिस पर सैनिकों के नाम लिखवाए, जो कि आज भी उन सैनिकों के महान इतिहास को संजोए हुए है। वहीं साल 1971 में भारत–पाक युद्ध में शहीद हुए जवानों के सम्मान में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 'इंडिया गेट' पर 'अमर जवान ज्योति' प्रज्वलित की थी।

किंतु देश की आजादी के बाद भारतीय सेना द्वारा लड़े गए युद्धों और उनमें अपना अभूतपूर्व योगदान देने वाले वीर सैनिकों को दर्शाने वाला एक समग्र युद्ध स्मारक की आवश्यकता महसूस हुई। साथ ही विश्व के कई देशों में से अब तक भारत ही ऐसा देश था, जिसका अपना राष्ट्रीय युद्ध स्मारक नहीं था। आखिरकार तकरीबन 70 साल बाद, राष्ट्रीय समर स्मारक अब बनकर तैयार हो चुका है। शहीदों की याद में निर्मित यह स्मारक, हमारे वीर जवानों को सम्मानित करने की दृष्टि से एक सराहनीय कदम है। साल 2014 में भारत सरकार ने इस स्मारक के निर्माण को मंजूरी दी थी, जिसे बनाने में कुल 176 करोड़ की लागत आई है। राष्ट्रीय युद्ध स्मारक को 25 फरवरी 2019 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्र को समर्पित किया। सर्वोच्च बलिदान के

सम्मान में निर्मित यह राष्ट्रीय स्मारक अब प्रत्येक भारतवासी को मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर करने वाले वीर सैनिकों को श्रद्धा सुमन अर्पित करने और उनकी शौर्य गाथाओं पर गर्व महसूस करवाने के लिए आमजन के लिए खोल दिया गया है।

राष्ट्रीय युद्ध स्मारक के डिजाइन को चुनने के लिए एक वैश्विक प्रतिस्पर्धा का आयोजन किया गया। इसका डिजाइन महाभारत के चक्रव्यूह की संरचना से प्रेरित है। 40 एकड़ में फैले इस स्मारक स्थल में भारतीय सैनिकों की शौर्य गाथा को दर्शाते चार चक्र हैं– रक्षा चक्र, त्याग चक्र, वीरता चक्र, अमर चक्र। रक्षा चक्र में 600 पेड़ लगाए गए हैं, जो देश की सुरक्षा में दिन–रात तैनात जवानों के अदम्य साहस को दर्शाते हैं। त्याग चक्र में भारतीय थल, वायु और नौसेना के उन जवानों के प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी जान की परवाह न करते हुए, देश की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए जवानों के नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित किए गए हैं। त्याग चक्र में ग्रेनाइट की पट्टियों पर कांस्य से तीनों सेनाओं के नाम अंकित कर उन्हें भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी गई है। इसमें स्वतंत्रता के पश्चात शहीद हुए 25,942 जवानों के नाम अंकित है। वीरता चक्र में भारत के अमर जवानों की विभिन्न सैन्य कार्रवाई दर्शाई गई है, जो कि भारतीय सैन्य इतिहास में निर्णायक हुई। इन्हें कांस्य के भित्ति–चित्रों के माध्यम से दिखाया गया है। इसमें भारतीय थल, वायु और नौसेना के अदम्य साहस की कहानियाँ है, जिसमें दुश्मनों के दाँत खट्टे कर दिए। इसमें 'ऑपरेशन ट्राइडेंट', 'ऑपरेशन मेघदूत', साल 1962 के भारत–चीन युद्ध की' रेजांगला मोर्चे की लड़ाई', 'तीथवाल की लड़ाई' औ रसाल 1971 के भारत–पाक युद्ध की' लोंगेंवाला की लड़ाई' एवं 'गंगा सागर की लड़ाई' को आकर्षक भित्ति–चित्रों के माध्यम से अंकित किया गया है।

राष्ट्रीय समर स्मारक के मध्य में अमर चक्र स्थापित किया गया है, जो इस बात का प्रतीक है कि देश के लिए शहादत देने वाले कभी मरते नहीं हैं, बल्कि अमर हो जाते हैं, उनकी वीरता अमर रहती है। अमर चक्र पर 15.5 मीटर लंबा एक स्तंभ है, जिसके शीर्ष पर राष्ट्रीय चिन्ह है, जो कि 412 किलो कांस्य से निर्मित किया गया है। स्तंभ के बीच में अखंड ज्योति है,जो भारतीय पराक्रम की अमरता का प्रतीक है। इस स्तंभ को हर समय सलामी देने के लिए हमेशा कोई न कोई सैनिक तैनात रहता है। हर शाम को पूर्ण सम्मान और निष्ठा के साथ 'बीटिंग रीट्रीट सेरेमनी' की जाती है। इसमें शहीदों के परिजनों को आमंत्रित किया जाता है और शहीदों को सलामी दी जाती है। राष्ट्रीय समर स्मारक का यह परिसर भारतीय सशस्त्र बलों की धुनों से सराबोर रहता है, जो सभी के भीतर देश प्रेम की भावना का संचार करता रहता है। सुबह हो या शाम, दिन हो या रात, राष्ट्रीय युद्ध स्मारक सदा जगमगाता रहता है। इस परिसर में कृत्रिम रोशनी की अद्भुत व्यवस्था की गई है। वही स्मारक के मरकज पर राष्ट्रध्वज की छत्र छाया में लहराते तीनों सेनाओं के ध्वज हमें जोश से भर देते हैं।

राष्ट्रीय समर स्मारक के परिसर में युद्ध–काल में सर्वोच्च सैन्य सम्मान, 'परमवीर चक्र' से सम्मानित योद्धाओं को समर्पित एक उद्यान भी है। इसमे ''परमवीर चक्र' से सम्मानित 21 योद्धाओं की कांस्य द्वारा निर्मित मूर्तियाँ भी स्थापित की गई हैं।

देश के वीर जवानों को समर्पित यह स्मारक, हमारी भावी पीढ़ियों को देशप्रेम और हमारी सेना के पराक्रम एवं बलिदान को याद कराते हुए, इस देश के प्रगति और तिरंगे की शान में काम करने के प्रति सदा प्रेरित करता रहेगा।

जय हिन्द, जय हिन्द की सेना।

छात्र, बी. ए. (ऑनर्स)
मास मीडिया हिंदी–अंतिम सत्र

प्रो एस.एम. अख्तर की कविताएँ

जीवन की छाया

मौत सदा
खड़ी रही,
हाथ भर दूरी की
परिधि पर।

कभी आई
फुसफुसाती,
सूर्य की
पहली किरण,
चीरते विकराल
निशा की
चादर।

कभी क़ैद,
करता रहा, क्षितिज पर
खड़ा काल,
एक–एक कर के
सुनहरी किरणें सारी।

क्यों

जो रचते हैं,
वह
बसते नहीं
जो बसते हैं,
वह
रचते नहीं,
फिर
जो रचते हैं,
वह
रचते क्यों है?

बर्फ के सीने पर

आज फिर उतरी हैं,
शब्दों की सीढ़ी पर कुछ साँसें,
तुम कहोगे,
जन्मी है कोई कविता नई,
लेकिन,
सच तो यह है
बर्फ़ के सीने पर
जम गई है, कुछ और आग।

जीवन

उजड़ी यादों के
खण्डहर में,
टूटे सम्बन्धों के
साये।

एहसासों के
सूखे पेड़ों पर,
फैली
अमरलता की
हरियाली।

शांत स्मृति–दुर्ग
के पहरे पर
श्वेत कबूतरों
के डेरे,
आक्रमण पर
बाज़
उन्हें भी घेरे।
रात उतरे जब
चाँदनी,
कोमल स्पर्श को,
निशाचर की
आँखों से
सहमे
सोम,
झींगुर के
अलापों से
टूटे
मौन।

ब्लैक होल

पहचानता तो हूँ,
हर रंग,
फिर भी
नहीं कर पाता
रंग भेद,
मिला देता हूँ
सब रंग
यह सोच कर,
बन जाएगा
प्रकाश।

लेकिन
हो जाता है
अंधकार,
रच जाता है,
हर बार
एक और
ब्लैक होल।

पन्ने

पहले,
तलाश कर लूँ,
चंद पन्ने,
फिर
लिख दूंगा,
हिसाब
ज़िंदगी का।

पन्ने जो
मिल गए,
तो क्या
लिखोगे
हिसाब।

वे
स्वयं ही
होंगे
हिसाब
ज़िंदगी के।

प्रोफ़ेसर, वास्तुकला संकाय, जामिइ

हिंदी संबंधी कुछ महत्वपूर्ण संस्थान

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना दिनांक 1 मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय (अब उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन की गई थी । केंद्रीय हिंदी निदेशालय (ब्क्) का मूल उद्देश्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के लिए दिए गए निम्नलिखित विशेष निर्देश का अनुपालन करना है – ''संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विर्निदिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें ।'' संविधान की इसी भावना के अनुपालन एवं कार्यान्वयन की दृष्टि से केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई । इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय चेन्नई, हैदराबाद, गुवाहाटी और कोलकाता में स्थित हैं ।

इसके साथ ही सभी भारतीय भाषाओं के लिए पारिभाषिक शब्दावली के विकास के उद्देश्य से महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने एक समिति की संस्तुति के आधार पर, 27 अप्रैल, 1960 को एक स्थायी आयोग के गठन का आदेश दिया जिसके अनुसरण में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड (4) के उपबंधों के अधीन, दिनांक 1 अक्टूबर, 1961 को भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। इस शब्दावली आयोग का मुख्य कार्य मानक शब्दावली विकसित करना तथा उसका प्रयोग, वितरण एवं प्रचार करना है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली विकसित करने में राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, क्षेत्रीय पाठ्य पुस्तक बोर्डों तथा राज्य अकादमियों के सहयोग से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में संदर्भ ग्रंथों/सामग्री का विकास भी सम्मिलित है। वर्तमान में वै.त.श.आयोग (CSTT), उच्च शिक्षा विभाग, भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत है जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है और यह 22 राज्य ग्रंथ अकादमियोंध्राजकीय पाठ्य–पुस्तक मंडलों, विश्वविद्यालय इकाइयों के सहयोग से कार्य करता है।

केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो

राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग में अनुवाद की महत्वपूर्ण और अपरिहार्य आवश्यकता को देखते हुए भारत सरकार के प्रशासनिक ढांचे में अनुवाद की सुनियोजित व्यवस्था आवश्यक थी। वर्ष 1960 में शिक्षा मंत्रालय के अधीन केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना करके असांविधिक साहित्य के हिंदी अनुवाद का कार्य आरंभ किया गया। लेकिन राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन का दायित्व गृह मंत्रालय के अधीन होने के कारण केंद्र सरकार के असांविधिक प्रक्रिया साहित्य के अनुवाद का दायित्व भी गृह मंत्रालय को सौंपा गया। तदनुसार 1 मार्च, 1971 को गृह मंत्रालय के अधीन केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई और केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, उपक्रमों आदि के असांविधिक प्रक्रिया साहित्य का अनुवाद कार्य केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को सौंपा गया। वर्तमान में केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में कार्य कर रहा है।

अनुवाद में सरलता, सहजता और शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने तथा अनुवाद–कौशल विकसित करने के लिए वर्ष 1973 से अनुवाद प्रशिक्षण का कार्य ब्यूरो को सौंपा गया। इस प्रकार ब्यूरो अनुवाद प्रशिक्षण देने का कार्य भी करता है। केंद्र सरकार के स्तर पर असांविधिक प्रक्रिया साहित्य के अनुवाद और अनुवाद कौशल–विकास के प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो भारत सरकार की एकमात्र मानक संस्था है।

केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान

संवैधानिक उपबंधों संवैधानिक उपबंधों के अनुपालन में केंद्रीय सरकार के हिंदी न जानने वाले कर्मचारियों को हिंदी सिखाने का कार्य सर्वप्रथम शिक्षा मंत्रालय द्वारा जुलाई, 1952 में प्रारम्भ किया गया।

राष्ट्रपति द्वारा गृह मंत्री को संबोधित 12 जून, 1955 के पत्र में दिए गए सुझावों पर कार्रवाई के अनुसरण में केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिंदी सिखाने का कार्य गृह मंत्रालय को सौंपे जाने का निर्णय लिया गया। तदनुसार अक्तूबर, 1955 से गृह मंत्रालय के तत्वावधान में हिंदी शिक्षण योजना के अंतर्गत कार्यालय समय में हिंदी कक्षाएँ चलाई जा रही हैं।

सन 1960 में हिंदी शिक्षण योजना के अंतर्गत हिंदी भाषा, हिंदी टंकण एवं हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य किया गया।

सन 1974 से केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों तथा उसके संबद्ध व अधीनस्थ कार्यालयों के कर्मचारियों के अतिरिक्त केंद्रीय सरकार के स्वामित्व अथवा नियंत्रणाधीन निगमों, निकायों, कंपनियों, उपक्रमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों के लिए भी हिंदी भाषा, हिंदी टंकण तथा हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण प्राप्त अनिवार्य कर दिया गया ।

सन 1975 में गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की स्थापना हुई और हिंदी शिक्षण योजना को राजभाषा विभाग के अधीन कर दिया गया ।
हिंदी शिक्षण योजना के दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नै एवं गुवाहाटी में पाँच क्षेत्रीय कार्यालय हैं।
प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्णकालिक केंद्रों के साथ–साथ अंशकालिक केंद्रों पर भी संचालित किए जा रहे हैं।

केंद्रीय हिंदी संस्थान

भारत सरकार के 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' के अधीन 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' एक उच्चतर शैक्षिक और शोध संस्थान है। संविधान के अनुच्छेद 351 के दिशा–निर्देशों के अनुसार हिंदी को समर्थ और सक्रिय बनाने के लिए अनेक शैक्षिक, सांस्कृतिक और व्यवहारिक अनुसंधानों के द्वारा हिंदी शिक्षण–प्रशिक्षण, हिंदी भाषाविश्लेषण, भाषा का तुलनात्मक अध्ययन तथा शिक्षण सामग्री आदि के निर्माण को संगठित और परिपक्व रूप देने के लिए सन 1961 में भारत सरकार के तत्कालीन 'शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय' ने 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' की स्थापना उत्तर प्रदेश के आगरा नगर में की थी। हिंदी संस्थान का प्रमुख कार्य हिंदी भाषा से संबंधित शैक्षणिक कार्यक्रम आयोजित करना, शोध कार्य कराना और साथ ही हिंदी के प्रचार व प्रसार में अग्रणी भूमिका निभाना है। प्रारंभ में हिंदी संस्थान का प्रमुख कार्य 'अहिंदी भाषी क्षेत्रों' के लिए योग्य, सक्षम और प्रभावकारी हिंदी अध्यापकों को ट्रेनिंग कॉलेज और स्कूली स्तरों पर शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित करना था, किंतु बाद में हिंदी के शैक्षिक प्रचार–प्रसार और विकास को ध्यान में रखते हुए संस्थान ने अपने दृष्टिकोण और कार्य क्षेत्र को विस्तार दिया, जिसके अंतर्गत हिंदी शिक्षण–प्रशिक्षण, हिंदी भाषा–परक शोध, भाषा विज्ञान तथा तुलनात्मक साहित्य आदि विषयों से संबंधित मूलभूत वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यक्रमों को संचालित करना प्रारंभ कर दिया और साथ ही विविध स्तरों के शैक्षिक पाठ्यक्रम, शैक्षिक सामग्री, अध्यापक निर्देशिकाएँ आदि तैयार करने का कार्य भी प्रारंभ किया गया। इस प्रकार के विस्तृत दृष्टिकोण और कार्यक्रमों के आयोजन से हिंदी संस्थान का कार्यक्षेत्र अत्यधिक विस्तृत और विशाल हो गया। इन सभी कार्यक्रमों के कारण हिंदी संस्थान ने केवल भारत में ही नहीं वरन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति और मान्यता प्राप्त की।

हिंदी संस्थान की स्थापना
हिंदी भाषा के अखिल भारतीय स्वरूप को समान स्तर का बनाने के लिए और साथ ही पूरे भारत में हिंदी भाषा के शिक्षण को सबल आधार देने के उद्देश्य से 19 मार्च, 1960 ई. को भारत सरकार के तत्कालीन 'शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय' ने एक स्वायत्तशासी संस्था 'केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल' का गठन किया और 1 नवम्बर 1960 को इस संस्थान का लखनऊ में पंजीकरण करवाया गया।

केंद्रीय हिंदी संस्थान के केंद्र

भारत सरकार द्वारा 'केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल' को 'अखिल भारतीय हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय' को संचालित करने का पूर्ण दायित्व सौंपा गया। 1 जनवरी, 1963 को अखिल भारतीय हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय का नाम बदल कर 'केंद्रीय हिंदी शिक्षण महाविद्यालय' कर दिया गया। बाद में 29 अक्टूबर, 1963 को संपन्न परिषद की गोष्ठी में केंद्रीय हिंदी शिक्षण महाविद्यालय नाम भी बदलकर 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' कर दिया गया। केंद्रीय हिंदी संस्थान का मुख्यालय आगरा में है। मुख्यालय के अतिरिक्त इसके 8 केंद्र हैं –

1 दिल्ली
2 हैदराबाद
3 गुवाहाटी
4 शिलांग
5 मैसूर
6 दीमापुर
7 भुवनेश्वर
8 अहमदाबाद

अख़बारों के आईने में जामिया

मातृभाषा दिवस के अवसर पर जामिया में बहुभाषी कवि गोष्ठी एवं कहानी पाठ का हुआ आयोजन

विजय बहादुर बहुटी

नई दिल्ली। अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के अवसर पर जामिया के राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ द्वारा बहुभाषी कवि गोष्ठी एवं कहानी पाठ का आयोजन किया गया। विभागाध्यक्ष, प्रोफेसर, अख्तर, हिंदी विभाग ने की। कार्यक्रमके विशिष्ट अतिथि प्रो. विपिन चंद्र पंत, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग रहे। जामिया के विभिन्न विद्यार्थियों, संकाय सदस्यों और प्रशासनिक कर्मचारियों ने हिंदी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, भाषाओं, ब्रजभाषा, अवधेमी, भोजपुरी, उर्दू और अंग्रेज़ी में रचनाएं प्रस्तुत की गईं। कार्यक्रम फैकेल्टर हिंदी भाषा में जबकि डॉ. सुरेश कुमार सिंह, अनुराग दीक्षित, अंजिता अरोरा, मुकुल सेठ पैथान, अदनान कफील दरवेश नेअपनी कविताएं प्रस्तुत की वहीं शुभम पांडे ने हिंदी कहानी सुनाई। डॉ. मनोज सहसंयोजक अंग्रेज़ी, डॉ. सलमाबानो प्रभार ने अतिथि, डीन प्रकाश ने सभापति, डॉ. जयंत नाथ त्रिपाठी ने संस्कृत, डॉ. रफ़ाकत ने ब्रजभाषा में अपनी मूल्यवान कविताओं से सबका मन मोहलिया वहीं सुरैय रहमान ने उर्दू गज़ल पेशकर अंतर ही सबा बीच और समा बांधा। डॉ. मनोज सहसंयोजक अंग्रेज़ी ने सबको संबोधित किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रही हिंदी विभागाध्यक्षा प्रो. रेहाना खातून ने छत्तीसगढ़ी में स्वागत गीत प्रस्तुत किए। कार्यक्रम के संयोजक डॉ. राजेश कुमार चौहान, हिंदी अधिकारी ने अपनी भोजपुरी कविताओं और अंग्रेज़ी में अनूदित कविताओं का पाठ किया। डॉ.रोशन ने कार्यक्रम को बहुत ही कुशलतापूर्वक संचालित किया। कार्यक्रम को आयोजित करने में इसे सफल बनाने में डॉ नदीम अख्तर, डॉ. कासरगन, अंजिल अली और जकात अहमद की अहम भूमिका रही। डॉ. इकबाल आलम ने सभी अतिथियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। डॉ. चारत भूषण, रफ़ीक़ेर सिंह, ऋषि कलेटेजा, फ़ारहा नैदी, जैब फ़ारहान खानी, तैयर फ़ातिमा आदि उत्साहवर्धक कार्यकर्ता भी इसके ने सरोज नाथ ने कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना-अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह कार्यक्रम इसलिए भी खास रहा चूंकि पूरी लाइन का मुख्य उपस्थितियों को लेकर आयोजित किया गया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि प्रो. विपिन चंद्र पंत, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग की कार्यक्रमकर्ताओं को सम्मानित संस्कृत की अतु-कविता ने विशेष रोचकता दिया।

विजय दर्पण टाइम्स Fri, 23 February 2018
epaper.vijaynews.in//c/26437746

दैनिक जागरण, 15.09.2017

घरों से दूर हुईं तो एक दिन मर जाएंगी मातृभाषाएं : पद्मा

जासं, नई दिल्ली : जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली विश्वविद्यालय सहित अन्य शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी दिवस पर कार्यक्रम आयोजित किए गए। जामिया में प्रसिद्ध साहित्यकार पद्मा सचदेव ने कहा कि भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन उम्मीद है कि इन्हें बचा लिया जाएगा। आज घरों में मातृभाषाएं नहीं बोलने के लिए स्त्रियां दोषी हैं। उन्होंने कहा कि मातृभाषाएं घरों से इसी तरह दूर होंगी, तो एक दिन मन जाएंगी। इन्हें बचाना है तो अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं में बातचीत और काम करें।

जामिया के मानविकी एवं भाषा विभाग के डीन प्रो. वहाजुदीन अल्वी ने कहा कि भाषा शब्दों की नहीं, बल्कि तहजीब की बात है। लेखनी में कठिन भाषा का प्रयोग हो सकता है, लेकिन बोलचाल में आसान जुबान बोली जानी चाहिए। जामिया के प्रेमचंद अभिलेखागार की निदेशक प्रो. सबीहा जैदी ने पद्मा सचदेव के भाषण को अपने विभाग की ओर से प्रकाशित करने की पेशकश की। जामिया के हिंदी अधिकारी राजेश कुमार ने कहा कि इस साल से विश्वविद्यालय जामिया दर्पण पत्रिका शुरू करने जा रहा है। इसमें विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लेख, कहानी और कविताएं प्रकाशित होंगी। इस अवसर पर जामिया में प्रसिद्ध चित्रकार मंजीत सिंह की चित्रकला प्रदर्शनी भी लगी। मंजीत सिंह पिछले 21 साल से हिंदी दिवस पर देश में कहीं न कहीं प्रदर्शनी लगा रहे हैं।

Hindustan Express
ہفت روزہ سنان
ہفتہ 12 جنوری 2019
Saturday 12 January,2019

جامعہ میں عالمی یوم ہندی منایا گیا

نئی دہلی: عالمی یوم ہندی کے موقع پر جامعہ ملیہ اسلامیہ میں دو روزہ پروگراموں کا انعقاد کیا گیا۔ جس میں ہندی زبان کی اہمیت وضرورت کے علاوہ جدید ٹیکنالوجی سے اسے ہم آہنگ کرنے پر غور وخوض ہوا۔ اس موقع پر "ترجمہ کے ذریعے ہندی زبان کی نشر واشاعت" پر ڈاکٹر جلد یو بھائی شرما صدر انٹرنیشنل پبلشرز ایسوسی ایشن نے خطاب کیا۔ انھوں نے بتایا کہ ہندی بہت تیزی سے فروغ پا رہی ہے لیکن اس کو جدید ٹیکنالوجی سے بھی ہم آہنگ کرنے کی ضرورت ہے۔ اپنے خطاب میں ڈاکٹر جلد یو شرما نے ہندی میڈیم یونیورسٹی کے سرکاری زبان کی طرف سے کیے جانے والے کاموں کی تعریف کی۔ اس موقع پر ان خاتون کو انعام سے بھی نوازا گیا جنھوں نے عالمی یوم ہندی کے موقع پر ستمبر 2018 میں یونیورسٹی کی سرکاری زبان ہندی میڈیم کی طرف سے منعقد مختلف مقابلوں میں لیا تھا۔ صدارت یونیورسٹی کی رجسٹرار پی صدیقی آئی پی ایس نے کی۔ جامعہ ملیہ اسلامیہ کے پی آر او احمد مکرم نے خطابت تقریب کیے۔ پروگرام میں یونیورسٹی کے اساتذہ وذمہ داران اور طلباء نے بڑی تعداد میں شرکت کی۔ عالمی یوم ہندی کے موقع پر الیکٹرانک میڈیا آڈیٹوریم یونیورسٹی کیمپس پر ہی "ہندی میڈیم کی پوسٹ" نمائش کیا گیا جس کو لوگوں نے پسند کیا۔

मयूर सँवाद

नई दिल्ली 23 अप्रैल से 29 अप्रैल, 2018

जामिया दर्पण का लोकार्पण लाल बिहारी लाल

नई दिल्ली। राजभाषा हिंदी प्रकोष्ठ,कुलसचिवकार्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया द्वारा प्रकाशितरजामिया दर्पणर पत्रिका के प्रवेशांक का आज लोकार्पण किया गया। लोकार्पणके अवसर पर कुलपति प्रो. तलत अहमद,समकुलपति प्रो. शाहिद अशरफ,कुलसचिव श्री ए.पी. सिद्दीकी,आईपीएस, दूरस्थ एवं मुक्त अधिगम केंद्र, जामिइके निदेशक प्रो. मुजतबा खान, अंतर्राष्ट्रीय संबंध कार्यालय के समन्वयक प्रो.मुकेश रंजन, रजामिया दर्पणर के संपादक डॉ. राजेश कुमार रमाँझीर,सह-संपादक डॉ. यशपाल,संपादन सहयोगी नदीम अख्तर, हरी नारायण, चौधरी आदिल अली तथा अन्य सहयोगी उपस्थित रहे इस अवसर पर प्रो. तलत अहमद ने पत्रिका के संपादन एवं प्रकाशन

की सराहना करते हुए कहाकि केंद्रीय विश्वविद्यालय होने के नाते हमारा उत्तरदायित्व है कि हम भारतीय संविधानमें वर्णित राजभाषा संबंधित अनुच्छेदों के अनुरूप कार्य करें। उन्होंने यह भी कहा किहमें पूर्ण विश्वास है कि इस दिशा में रजामिया दर्पणर महत्वपूर्ण भूमिकानिभाएगी। रजामिया दर्पणर जामिया के नवसृजकों को अपनी रचनात्मक क्षमता प्रदर्शितकरने का एक मंच प्रदान करेगी और राजभाषा हिंदी के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदानदेगी।

جامعہ ملیہ میں عالمی یوم ہندی منایا گیا

हिन्दुस्तान

तरक्की को चाहिए नया नजरिया

भोजपुरी नाटक माटी के बर्तन का मंचन होगा

नई दिल्ली। जामिया मिल्लिया इस्लामिया में विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर भोजपुरी नाटक माटी के बर्तन का मंचन होगा। राजेश कुमार मांझी द्वारा लिखित इस नाटक का निर्देशन पूनम सिंह ने किया है।

मयूर सँवाद

मयूर संवाद : 20 अगस्त 2018: संवाददाता (दिल्ली) : मॉरीशस में दिनांक 18–20 अगस्त तक आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दूसरे दिन भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी की स्मृति में काव्यांजलि का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने किया और मंच की शोभा बढ़ाया सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष प्रसून जोशी, गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा, पश्चिम बंगाल के राज्यपाल केसरी नाथ त्रिपाठी, अशोक चक्रधर, डॉ राजेश कुमार 'मांझी', डॉ. कुंवर बेचैन, सुमन दुबे, मंजूषा रंजन, मॉरीशस के पाँच कवि, अमेरिका के एक कवि, फीजी के एक कवि, लंदन के एक कवि। इन सभी ने अपनी रचनाएं हिंदी में सुनाई वहीं जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के हिंदी अधिकारी डॉ राजेश कुमार 'मांझी' ने भोजपुरी कविता के माध्यम से अटल बिहारी वाजपेयी जी को श्रद्धांजलि अर्पित किया। गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा ने भोजपुरी में गीत गाया और लखनऊ की सुमन दुबे ने भोजपुरी कविता प्रस्तुत किया। अंत में विदेश मंत्री महोदया सुषमा स्वराज जी ने अटलबिहारी वाजपेयी जी की कविता के माध्यम से ही उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। काव्यांजलि का संचालन भारतीय कवि गजेन्द्र सोलंकी ने की।

मयूर सँवाद

जामिया में वाल्मीकि जयंती का आयोजन

मयूर संवाद : 25 अक्टूबर 2018: संवाददाता (दिल्ली): जामिया मिल्लिया इस्लामिया के सेनिटेशन विभाग द्वारा महर्षि वाल्मीकि जयंती का सफल आयोजन बड़े ही धूमधाम और हर्षोल्लास के साथ नेहरू गेस्ट हाउस में किया गया। जहाँ कार्यक्रम की अध्यक्षता हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. हेमलता महिश्वर ने की, वहीं विशिष्ट अतिथि श्री महिपाल आर्य और श्री कृष्ण कुमार जी थे। सम्मानित अतिथियों में मुकेश अरिवर्धन अध्यक्ष भारतीय वाल्मिकी आदि धर्म समाज, दिल्ली प्रदेश तथा सरिता विहार के निगम पार्षद श्री मनीष चौधरी शामिल हैं।

कार्यक्रम के दौरान अपना विचार व्यक्त करते हुए जामिया के हिंदी अधिकारी और जामिया दर्पण के संपादक डॉ. राजेश कुमार 'माँझी' ने कहा कि कोई भी व्यक्ति किसी विशेष समाज या वर्ग में जन्म लेने से शुद्र या पंडित नहीं कहा जा सकता। किसी पिछड़ी जाति या समाज में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी अपने अच्छे कर्मों से महान बन जाता है और पूरा विश्व उसे सम्मान देता है। इसके विपरीत किसी उच्च कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति उस समय आदर सत्कार नहीं पाता है जब उसके कर्म अशोभनीय हो जाते हैं। डॉ. राजेश कुमार 'माँझी' ने यह भी कहा कि विश्व में कोई भी कार्य बड़ा या छोटा नहीं है और जूता सिलाई से चंडी पाठ तक के सभी कार्य सम्मानजनक हैं। इसलिए जरुरत इस बात की है कि हम सभी लोगों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलें ताकि समाज में भाईचारे का प्रचार प्रसार हो ।

इस अवसर पर हिंदी विभाग के प्राध्यापक डॉ मुकेश कुमार मिरोठा ने भी अपनी बात रखी और कहा कि कोई भी संत किसी खास समुदाय का नहीं होता है। वह संपूर्ण विश्व के लिए होता है और उसकी शिक्षाएं हमें भाईचारा, अपनत्व आदि की सीख देती हैं ।

श्री ए.पी. सिद्दीकी, आईपीएस, कुलसचिव, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, मौलाना मोहम्मद अली जौहर मार्ग, नई दिल्ली–110025 द्वारा प्रकाशित
संपादक : डॉ. राजेश कुमार 'माँझी'
मुद्रक: मकतबा जामिया लिमिटेड, नई दिल्ली–110025